भगवान श्रीकुन्दकुन्द-कहान जैनशास्त्रमाला

पुष्प नं १४०

प्रथम आवृत्ति : प्रत २५००

वीर सं २५०२ ई. स. १९७६

☆

मूल्य

एक रुपया

☆

प्रकाशक

श्री दि. जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ (सौराष्ट्र)

☆

मुद्रक

मगनलाल जैन

अजित मुद्रणालय

सोनगढ (सौराष्ट्र)

प्रस्तावना

पं. श्री दौलतरामजीने छहढाला पुस्तककी पद्यरूप
ना की है। ससारके जीवोंको दु खसे छूटनेका व सुखकी
तिका पथ दिखानेवाली यह 'छहढाला' सभी जैनोंके लिये
योगी है; अनेक जगह पाठशालाओंमें यह पढाई जाती
एव वहुतसे स्वाध्यायप्रेमी जिज्ञासु इसे कण्ठस्थ भी करते
। इस पुस्तकके प्रारंभमें, वीतरागविज्ञानके अभावमें जीवने
ारकी चार गतियोंमें किस-किस प्रकारके दु ख भोगे यह
ाया है, और उस दु खके कारणरूप मिथ्यात्वादिका स्वरूप
मझाकर उसको छोडनेका उपदेश दिया है, इसके वाद
ा मिथ्यात्वादिको छोडनेके लिये मोक्षके कारणरूप सम्यग्दर्शन
ान-चारित्रका स्वरूप समझाकर उसकी आराधनाका
देश दिया है।—ऐसे, इस छोटीसी पुस्तकमें जीवको
तकारी प्रयोजनभूत उपदेशका सुगम सकलन है, और
समें भी सम्यक्त्वप्राप्तिके लिये खास प्रेरणा देते हुए यह
तीसरी ढालमें कहा है कि—

मोक्षमहलकी परथम सीढी, या बिन ज्ञान-चरित्रा-
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा ॥८॥

दौल ! समझ सुन चेत सयाने काल वृथा मत खोवे ।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है जो सम्यक् नहिं होवे ॥

सम्यग्दर्शनके विना ज्ञान या चारित्र सच्चा नहीं होता, सम्यग्दर्शन ही मुक्तिमहलकी प्रथम सीढी है । अतः हे भव्य जीवों ! यह नरभव पाकरके काल गमाये विना शीघ्र ही तुम अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक सम्यक्त्वको धारण करो ।

पंडित श्री दौलतरामजी रचित इस छहढालाकी हिन्दी गुजराती–मराठी–कन्नड भाषाओमें भिन्न भिन्न प्रकाशकोंके द्वारा वीससे अधिक आवृत्तियाँ छप चुकी है, और जैनसमाजमें सर्वत्र इसका प्रचार है । सोनगढ संस्थाके माननीय प्रमुख श्री नवनीतलालभाई सी. झवेरीकी भी यह एक प्रिय पुस्तक है और आपको यह कंठस्थ भी है । पू. श्री कानजीस्वामीके अध्यात्मरसपूर्ण प्रवचनोंका लाभ लेते हुए एकवार आपको ऐसी भावना हुई कि यदि इस छहढाला पर पू. स्वामीजीके प्रवचन हो और वह छपकर प्रकाशित हो तो समाजमें बहुतसे जिज्ञासु इसके सच्चे भावोंको समझे और इसके स्वाध्यायका यथार्थ लाभ ले सकें । ऐसी भावनासे प्रेरित होकर आपने पू. स्वामीजीसे छहढाला पर प्रवचन करनेकी प्रार्थना की, उसके फलस्वरूप छहढाला-प्रवचनकी यह तीसरी पुस्तक आज हमारे जिज्ञासु साधर्मीओंके हस्तमें आ रही है । इस प्रवचनके द्वारा पू स्वामीजीने छहढालाका महत्त्व बढाया

है और इसके भावोंको खोलकर जिज्ञासु जीवों पर उपकार किया है। छहढालाके छहो अध्यायके प्रवचनोंका अंदाज एक हजार पृष्ठ होनेकी सभावना है जो कि अलग-अलग छह पुस्तकोंमें प्रकाशित होगा। इनमेंसे तीसरे अध्यायकी यह पुस्तक आपके सन्मुख है और आगेकी तैयार हो रही है।

इस पुस्तकके रचयिता पं. श्री दौलतरामजी एक कवि थे। किसी कविमें मात्र काव्यशक्तिका होना ही पर्याप्त नहीं है परन्तु उस काव्यशक्तिका उपयोग जो ऐसी पद रचनामें करे कि जिससे जीवोंका हित हो—वही उत्तम कवि है। ससारके प्राणी विषय-कषायके शृंगार-रसमें तो फँसे ही हुए है, और ऐसे ही शृंगाररसपोषक काव्य रचनेवाले 'कुकवि' भी बहुत हैं; परन्तु शृंगाररसमेंसे विरक्त कराके वैराग्यरसको पुष्ट करे ऐसे हितकर अध्यात्मपदके रचनेवाले 'सुकवि' संसारमें विरल ही होते हैं। ऐसी उत्तम रचनाओंके द्वारा अनेक जैन कवियोंने जैन शासनको विभूषित किया है। श्री जिनसेनाचार्य, समन्तभद्राचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, मानतुंगस्वामी, कुमुदचन्द्रजी इत्यादि हमारे प्राचीन संत–कवियोंने अध्यात्मरस भरपूर जो काव्य रचनाये की है उनकी तुलना, आध्यात्मिक दृष्टिसे तो दूर रही परतु साहित्यिक दृष्टिसे भी शायद ही कोई कर सके। हिन्दी साहित्यमें भी प. बनारसीदासजी, भागचन्दजी, दौलतरामजी, द्यानतरायजी इत्यादि अनेक

पूज्य स्वामीजीके उन प्रवचनोंमेंसे दोहन करके २५४ छोटे छोटे प्रश्नोत्तरोंका संकलन इस पुस्तकके अन्तभागमें दिया है,—वह भी तत्त्वजिज्ञासुओंको रुचिकर होगा और उन प्रश्नोत्तरोंके द्वारा सारी पुस्तकका सार समझनेमें सुगमता रहेगी। समस्त भारतके व विदेशके भी तत्त्वजिज्ञासु लोग ऐसे वीतरागी-साहित्यका अधिकसे अधिक लाभ लेकर वीतरागविज्ञान प्राप्त करें. ऐसी जिनेन्द्रदेवके चरणोंमें भावना करता हूँ।

अषाढ सुद–२
वीर सं. २५०२ —ब्र. हरिलाल जैन
सोनगढ

प्रमुखश्रीका निवेदन

मुझे बहुत हर्ष है कि पंडितवर्य श्री दौलतरामजी रचित छहढाला पर पू. श्री कानजीस्वामीने जो प्रवचन किये उनमेंसे तीसरी ढालके प्रवचन इस 'वीतराग-विज्ञान' पुस्तकमें प्रकाशित हो रहे हैं।

इस छहढालाने पू. श्री कानजीस्वामीके संसर्गमें आने के पहले मेरे जीवनमें अच्छा असर किया है और बार बार इसके अध्ययनके कारण यह सारा ग्रंथ कण्ठस्थ हो गया है; अभी भी हररोज इसकी दो ढालका मुखपाठ करनेसे और भी अधिक भाव खुलते जाते है।

सं. २०१५ में जब पू. श्री कानजीस्वामी दूसरी बार बम्बई पधारे तब आपके विशेष परिचयमें आनेका मुझे अवसर मिला और आपको घर पर निमंत्रित किया; उस प्रसंग पर जैनधर्मके सिद्धान्तोंकी जो छाप मेरे दिलमें थी वह मैंने एक पत्र द्वारा गुरुदेवके समक्ष व्यक्त की जिसमें छहढालाका उल्लेख मुख्य था। उसके बाद भी गुरुदेवका बारम्बार समागम होने पर (विशेष करके सोनगढमें सुबहके समय आपके साथ घूमनेको जाते समय) जिन जिन विषयोंकी

पुण्यरागसे भी आकुलता ही है, अतएव दुःख ही है, उसमें सुख नहीं है। पाप और पुण्य दोनों प्रकारकी आकुलतासे रहित जो सहज ज्ञान-आनंदमय आत्मस्वभाव है उसमे एकाग्रताके द्वारा जो शांत-निराकुल-चेतनरसका अनुभव होता है वह सुख है, ऐसे सुखकी पूर्ण प्राप्ति वही मोक्ष है। उसको पहचानकर उसके मार्गमे लगना चाहिए।

उस मोक्षका मार्ग क्या है?–तो कहते हैं कि—

सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चरन शिव-मग सो द्विविध विचारो;
जो सत्यारथरूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।

पुण्य एवं पाप दोनोंमे आकुलता होनेसे उनको मोक्षमार्गमें-से निकाल दिया है। संपूर्ण निराकुल सुखके अनुभवस्वरूप जो मोक्ष उसकी प्राप्तिका मार्ग भी निराकुल भावरूप ही है। सच्चा मोक्षमार्ग निराकुल अर्थात रागरहित ही है। उसके साथ जो राग-सहित श्रद्धा–ज्ञान–आचरण हो उसको मोक्षमार्गका कारण कहना सो व्यवहार है। जो व्यवहार–रत्नत्रय है वह सत्यार्थ मोक्षमार्ग नहीं है, नियमरूप मोक्षमार्ग वह नहीं है। रागसे पार आत्माके स्वभावमें प्रविष्ट होकर जो सम्यक् श्रद्धा–ज्ञान–चारित्र हुआ वह निश्चय–मोक्षमार्ग है, वह सत्यार्थ मोक्षमार्ग है, मोक्षके लिये वह नियमसे करने योग्य कार्य है, अतः कहा है कि 'शिवमग लाग्यो चहिए।' शुभरागमे लगे रहनेके लिये न कहा, परन्तु आत्माके सम्यक् श्रद्धा–ज्ञान–चारित्ररूप निश्चयमोक्षमार्गमे लगना कहा उसीमें आत्माका हित व सुख है।

सुख तो आत्माका स्वभाव है. राग आत्माका स्वभाव नहीं है; अतः राग आत्माके सुखका कारण नहीं हो सकता। सुख जिसका स्वभाव है उसको जाननेसे-अनुभवमें लेनेसे ही सुख होता है। जीव सुख चाहते हैं परन्तु अपने सुखस्वभावको भूलकर वह रागमें या संयोगमें सुख शोधते हैं। अरे भाई! सुख रागमें होता है? कि वीतरागतामें? वीतरागता ही सुख है उसको जीवने कभी नहीं जाना। जिसने रागमें या पुण्यमें सुख माना उसको मोक्षकी श्रद्धा नहीं है। इसलिये कहा कि सुख तो आकुलता रहित है और ऐसे सुखके लिये शिवमार्गमें लगे रहना चाहिए। आत्माके ऐसे अतीन्द्रिय-सुखको धर्मी जीव ही जानते हैं. और स्व-परके भेदज्ञानपूर्वक वीतराग-विज्ञानसे ही वह सुख अनुभवमें आता है।

पहली ढालमें चार गतिके दुःख दिखाये, दूसरी ढालमें उन दुःखके कारणरूप मिथ्यात्वादिको छोड़कर आत्महितके पथमें लगनेके लिये कहा अब इस तीसरी ढालमें आत्महितका उपाय दिखाते हैं। पूर्वाचार्योंके कथनका सार लेकर पंडितजीने इस छहढालारूपी गागरमें सागर भर दिया है; संस्कृत-व्याकरण आदि न आते हों तो भी जिज्ञासु जीव समझ सकें ऐसी सुगम शैलीसे हिन्दी भाषामें प्रयोजनभूत कथन किया है।

आत्माका कल्याण कहो, हित कहो या सच्चा सुख कहो, सब एक ही है। जिस भावसे अतीन्द्रियसुख हो वही आत्महित है; इसके विना और कहीं भी शरीरमें-धनमें या प्रतिष्ठा आदिमें सुख नहीं है, उनके लक्षमें तो आकुलता है परन्तु अज्ञानी उसमें सुख

सुखस्वभाव तो आत्मा ही है। निराकुलता है वह सुख है, और वह आत्माकी मुक्तदशा है, अतः सुखके अभिलाषीको मोक्षके मार्गमें लगना चाहिए। मोक्षमार्ग माने रागरहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, मोक्ष निराकुल है और उसका मार्ग भी निराकुल है, रागमें तो आकुलता है—दुःख है।

सिद्ध व अर्हन्त भगवंत बाहरके किसी भी साधनके बिना स्वयमेव अनंत अतीन्द्रिय आनन्दका अनुभव करते हैं। अभी इस समय भी सीमंधर भगवान एवं अन्य लाखों अरिहंत भगवंत ऐसे अनंत आनन्दमें विराजमान हैं, सिद्ध भगवंत अनंत हैं वे लोकके शिखर विराज रहे हैं। प्रत्येक आत्मा ऐसे ही अतीन्द्रियसुखसे भरा है; उसको पहचानकर उसके ही आश्रयसे मोक्षसुख साधनेके उपायमें लगना चाहिए। श्री जिनदेवके द्वारा कथित वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो कि आत्मशुद्धिरूप है वही सच्चा मोक्षमार्ग है। वीतरागी रत्नत्रय कहो या निश्चयरत्नत्रय कहो, वह मोक्षके लिये नियमसे कर्तव्य है अतः उसे 'नियम' कहा है उसमें रागका अभाव सूचित करनेको 'सार' विशेषण लगाया है, ऐसे शुद्ध रत्नत्रयरूप जो नियमसार है वही परमसुखका मार्ग है।

अब कहते हैं कि ऐसा जो मोक्षमार्ग है उसका दो प्रकारसे विचार करो : एक सत्यार्थरूप सच्चा मोक्षमार्ग है सो तो निश्चयसे मोक्षमार्ग है और उसका जो कारण है—सच्चा कारण नहीं परन्तु उपचारकारण है—सो व्यवहार है। जो निमित्तकारण है वह स्वयं मोक्षमार्ग न होते हुए भी उपचारसे उसको मोक्षमार्ग कहना

सो व्यवहार है, वह सत्यार्थ नहीं है परन्तु असत्यार्थ है, अभूतार्थ है। जो सच्चा मोक्षमार्ग है उसीको मोक्षमार्ग कहना वह सत्यार्थ है, वह निश्चय है।

यहां सत्यार्थको ही निश्चय कहा है यह महत्त्वकी बात है। निश्चयको सत्यार्थ कहा उसका अर्थ यह हुआ कि व्यवहार असत्यार्थ है। निर्विकल्प शुद्ध आत्माके आश्रयसे जो रत्नत्रयरूप शुद्ध परिणति हुई वह मोक्षमार्ग है, वही सच्चा मोक्षमार्ग है—ऐसा समझना। आंशिक शुद्धता पूर्ण शुद्धताका कारण है, इसमें कारण और कार्यकी एक जाति होनेसे यह निश्चयकारण है, परन्तु उसके साथमें जो अशुद्धता है (-शुभराग है) वह तो शुद्धताका सच्चा कारण नहीं है; परन्तु शुद्धताकी साथमें भूमिकाके अनुसार देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा; नव तत्त्वका ज्ञान और पंचमहाव्रतादिके विकल्प होते है, उनको भी 'मोक्षमार्गका सहकारी' जानकर (-वे स्वयं मोक्षमार्ग नहीं है परन्तु मोक्षमार्गमें साथ साथ रहने वाले है अतः सहकारी जानकर) उपचारसे उनको भी मोक्षमार्ग कहते है परन्तु वह सत्यार्थ मोक्षमार्ग नहीं है, अतः उनको व्यवहार कहा, गौण कहा, और असत्यार्थ कहा, ये अशुद्ध है, पराश्रित है। और शुद्ध आत्माके आश्रयसे रागरहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग है वह निश्चय है, मुख्य है, सत्यार्थ है, शुद्ध है और स्वाश्रित है। इसप्रकार 'द्विविध मार्ग कहा उसमें एक ही सत्यार्थ है—'जो सत्यारथरूप सो निश्चय' एवं निश्चय मोक्षमार्ग ही सच्चा है। इसप्रकारसे मोक्ष-मार्गके स्वरूपका जो विचार किया जाय वह विचार सच्चा है, परन्तु

आता है। जो निश्चय है वही मुख्य है, वही सत्य है; जो व्यवहार है, वह आरोप है, गौण है। परिणति अन्तरमे झुककर ज्ञायक स्वभावमे मग्न होनेसे अतीन्द्रियसुखका वेदन होता है वही सच्चा परमार्थ-निश्चयमोक्षमार्ग है, और वही शुद्धमार्ग है। ऐसे ही मार्गके सेवनसे तीर्थंकरादि महान पुरुषोंने मोक्षसुख प्राप्त किया है; और मुमुक्षुओंको भी यही मार्ग दिखाया है।

मिथ्यादृष्टिका निश्चय या व्यवहार एक भी नय सच्चा नहीं होता, क्योकि नय तो सच्चे ज्ञानका प्रकार है। शुद्ध आत्माके ज्ञानके बिना प्रमाणज्ञान नहीं होता अर्थात् भावश्रुत नहीं होता और भावश्रुतप्रमाणके बिना निश्चय या व्यवहार नय नहीं होता। आत्माका स्वानुभव होने पर मति-श्रुत दोनो ज्ञान एकसाथ सम्यक् हो जाते है, उनमेसे श्रुतज्ञानमे अनन्त प्रकारके नय होते हैं। नय है सो सच्चे श्रुतज्ञानका प्रकार है, परन्तु ज्ञान ही जिसका मिथ्या हो उसको नय कैसा ?—अर्थात् उसको नय होता ही नहीं। अत मिथ्यादृष्टि जिसको व्यवहार समझकर सेवन करता है वह तो मोक्षमार्गका सच्चा व्यवहार भी नहीं है। बिना निश्चयका व्यवहार तो मिथ्या है। शुद्ध आत्मा जैसा है वैसा जानकर प्रतीतिमे लिया तब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ, उसके साथ चारित्रका भी अश प्रगट हुआ, इसप्रकार मोक्षमार्गका प्रारभ हुआ। ऐसे जीवको निश्चय-व्यवहार सच्चा होता है। पहले अकेला व्यवहार हो और वह करते करते निश्चय प्रगट हो जायगा—ऐसा नहीं है। उपयोगस्वरूप शुद्धात्माके आलम्बनमे जो शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ वह शुद्ध मोक्ष-

मार्ग है, और उसके साथ जो शुभ रागादि है वह अशुद्ध है, उसको मोक्षमार्गका कारण कहना—सो उपचार है।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यधातु है उसने अपने अनंत आनंदको अपनेमें धारण किया है ऐसे चैतन्यसमुद्रमें लीन होते ही मोक्षके आनन्दका अनुभव होता है। ऐसे आनन्दका अनुभव हो तभी मोक्षमार्ग प्रगट हुआ ऐसा समझना चाहिए। आत्मा तो रत्नोंकी बड़ी खानि है उसको खोदनेसे अर्थात् अन्तर्मुख होकर अनुभवमें लेनेसे महान रत्न निकलते हैं अनन्त आनन्दमय रत्न उसमें भरे हैं।

❀ संसारके जड़रत्नोंका तो धर्ममें कोई मूल्य ही नहीं है।

❀ आत्माके मोक्षके कारणरूप तीन रत्न हैं—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

❀ उसके फल केवलज्ञानादि चतुष्टय—सो महारत्न है।

❀ अनन्त केवलज्ञानपर्यायरूप होनेकी जिसमें ताकत है ऐसा ज्ञानगुण वह महा-महारत्न है।

❀ और अनन्त गुणरत्नोंसे भरा हुआ जो चैतन्यसमुद्र है वह तो महा-महा-महारत्न, अर्थात् चैतन्यरत्नाकर है।

भाई, ऐसे रत्नोंकी पूरी खानि तुम ही हो, तुम अपने मति-श्रुतज्ञानको अन्तर्मुख करके तुम्हारे ही अंतरमें चैतन्यरत्नोंके पहाड़को देखो। जीव स्वयं आनन्दका बड़ा पहाड़ है, परन्तु दृष्टिदोषके कारण वह अपनेको नहीं देखता। जैसे सामने ही रत्नोंका बड़ा पहाड़ हो परन्तु जिसकी आँखके आड़े तृणका आवरण है वह मनुष्य पहाड़को नहीं देखता, वैसे जीव स्वयं अनंत गुण रत्नोंका बड़ा पहाड़ है,

परन्तु रागमें एकत्वभावनारूप जो तृण अर्थात् मिथ्यात्वका तुच्छ भाव, उसके आवरणके कारण अज्ञानी जीव अपने चैतन्यस्वभावरूप बड़े पहाड़को भी नहीं देख सकता। वीतरागविज्ञानके उपदेशके द्वारा ज्ञानी सन्त उसका भ्रम छुड़ाकर उसका सच्चा स्वरूप दिखाते हैं कि जिसकी महिमा मेरुपर्वतसे भी महान है। अरिहंतोंने जो केवलज्ञान प्राप्त किया वह कहाँसे आया? क्या बाहरसे आया?—नहीं, अन्दर आत्मामें ही था वह प्रगट हुआ, वैसे प्रत्येक आत्मा अरिहंत भगवान जैसा ही सामर्थ्यवाला है। आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसे अपने आत्माको तुम पहचानो।

जो जानते अरिहंतके द्रव्य गुण अरु पर्ययको ।
वे जानते निज आत्मको, अरु मोह पाते क्षयको ॥ ८० ॥

केवलज्ञानी अरिहंत भगवानके द्रव्य–गुण और पर्याय तीनों शुद्ध चेतनमय हैं, और रागका उनमें सर्वथा अभाव है, उनको पहचाननेसे रागसे भिन्न चैतन्यस्वरूप अपना आत्मा अनुभवमें आता है और सम्यग्दर्शन होता है। अपने आत्माके शुद्धस्वभावका निर्णय एवं अरिहंतके शुद्धात्माका निर्णय, ये दोनों एकसाथ ही होते हैं। रागसे जो भिन्न है ऐसी ज्ञानपर्यायने अंतरमें ढलकर जब आत्माका अनुभव किया तब उसकी साथमें अरिहंतके व सिद्धके शुद्धात्माका निर्णय भी सच्चा हुआ। इसके पहले अरिहंतके शुद्ध आत्माका निर्णय करनेवाला जो लक्ष था उसको उपचारसे सम्यग्दर्शनका कारण कहा जाता है। जब परलक्ष छोड़कर अंतरमें आया तभी आत्म-स्वरूपका सम्यक् निश्चय हुआ और तभी भूतनैगमनयसे पूर्वके

रागमिश्रित निर्णयको उसका कारण कहा। बिना निश्चय किसका व्यवहार कहना? निश्चयके लक्षके बिना एकान्त परसन्मुखतासे तो अनंतबार अरिहंतदेवका विचार किया, धारणा की, वह सम्यग्दर्शनका कारण क्यों न हुआ?—क्योंकि निश्चयका लक्ष नहीं था। निश्चयसे रहित यह सब वास्तवमें व्यवहाराभास ही है, अरिहंतका सच्चा निर्णय उसमें नहीं है। अतः अज्ञानीके शुभरागमें मोक्षमार्गका व्यवहार लागू नहीं होता, उसको मोक्षमार्ग हुआ ही नहीं है। रागके द्वारा मोक्षमार्गका प्रारंभ नहीं होता। रागसे दूर होकर (भिन्न होकर) ज्ञान जब अन्तर्स्वभावमें प्रवेश कर तन्मय हो जावे तब शुद्धात्माके अपूर्व अनुभव सहित मोक्षमार्गका प्रारम्भ होता है।

मेसे नहीं आता। रागमेंसे ज्ञानका अंकुर कभी नहीं हो सकता, आत्मा स्वयं वीतराग स्वरूप है—उसमेंसे ज्ञानका अंकुर आता है, उसके साथ जो शुद्ध दृष्टि है वह सम्यग्दर्शन है, और जितनी रागरहित स्थिरता हुई वह सम्यक्चारित्र है—ऐसा मोक्षमार्ग है। मोक्षका मार्ग अर्थात् आनन्दका मार्ग। आत्मराम निजपदमें रमे सो आनन्दका मार्ग है परपदमें रमे सो मोक्षमार्ग नहीं है, उसमें आनंद नहीं है। रागादिक भाव तो परपद है, उसमें जो रमे अर्थात् उसमें जो सुख माने उसको मोक्षमार्ग नहीं हो सकता। मोक्षका मार्ग तो स्वपदमें ही समाता है। काया और आत्माकी भिन्नताको जानकर निजस्वरूपमें जो समाये-लीन हुए ऐसे निर्ग्रंथ मुनिवरोंका मार्ग वही भवके अन्तका उपाय है, उसीसे मोक्षकी प्राप्ति होती है।

मोक्षके मार्गमें भावश्रुतज्ञान होता है, वह भी आनन्दके स्वादसे भरपूर है और स्वसंवेदनरूप प्रत्यक्ष है। जैसे केवलज्ञान प्रमाण है वैसे श्रुतज्ञान भी प्रमाण है परोक्ष होने पर भी वह प्रमाण है, और स्वसंवेदनमें तो वह प्रत्यक्ष है। अपने आत्माके अनुभवको साधक जीव स्वसंवेदनरूप प्रत्यक्ष प्रमाणसे जानते हैं, उसमें उनको कोई सन्देह नहीं। परोक्षरूप प्रमाणज्ञान भी सन्देहसे रहित होता है। जब केवलज्ञानकी ही जातिका स्वसंवेदन-प्रत्यक्षरूप भावश्रुत-ज्ञान हो तभी मोक्षमार्ग होता है और उसी जीवको सच्चे निश्चय —व्यवहार नय होते हैं।

सम्यक्चारित्र सो मुख्य मोक्षमार्ग है।

चारित्र अर्थात् स्थिरता,—किसमें ? निजस्वरूपमें।
निजस्वरूप क्या है उसके ज्ञानके बिना स्थिरता नहीं होती।

संसारके कारणरूप शुभाशुभरागसे निवृत्त होकर अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें प्रवृत्ति होना सो सम्यक्चारित्र है। आत्मज्ञानपूर्वक ही ऐसा चारित्र होता है, अज्ञानीको नहीं होता—यह सूचन करनेके लिये उसको 'सम्यक्' कहा है।

तत्त्वके निर्णयका विचार, सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी यथार्थता विचार इत्यादि शुभभाव होते हैं, और भूतनैगमनयसे उनको भी मोक्ष-मार्गका कारण कहते हैं। सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेकी भूमिकामें भी ऐसे शुभभाव होते हैं, परन्तु उनसे विरुद्ध (अर्थात् कुदेवादिको माननेका, या जगतको किसीने बनाया ऐसे विपरीततत्त्वको माननेका) भाव उस भूमिकामें नहीं होता,–ऐसा ज्ञान करानेके लिये उस भूमिकाके शुभभावोंको व्यवहारकारण कहनेमें आता है। वहां अकेला शुभराग ही नहीं है अपितु सम्यग्ज्ञानपूर्वक शुद्धताका अंश भी साथमें है। इस प्रकारकी निश्चय–व्यवहारकी संधि मोक्षमार्गमें रहती है। यहाँ निश्चय रहित व्यवहारकी तो बात ही नहीं है, और निश्चय सहितका जो व्यवहार है वह भी मोक्षका सच्चा कारण नहीं है, उपचारसे ही उसको कारण कहते हैं। सच्चा मोक्ष कारण तो निश्चय सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र ही है और वह आत्माके अनुभवरूप है।

मोक्षमार्गमें पहले सम्यग्दर्शन और बादमें सम्यग्ज्ञान ऐसा नहीं है, एवं पहले सम्यग्ज्ञान व बादमें सम्यग्दर्शन ऐसा भी नहीं है, शुद्ध आत्माके अवलंबनसे दोनों एक साथ ही हो जाते हैं, तो भी दीपक और प्रकाशकी तरह उनमें कारण–कार्यपना कहा जाता है, सम्यग्दर्शनको कारण और सम्यग्ज्ञानको कार्य कहा है परन्तु वे आगे–पीछे नहीं हैं, दोनों साथ ही हैं। स्व-आत्माको ज्ञेय बनानेवाले ज्ञानके साथ उसकी निर्विकल्प प्रतीति भी रहती ही है। जिसकी प्रतीति करते हैं उसका सच्चा ज्ञान भी साथमें रहता ही है। बिना जानी हुई वस्तुकी श्रद्धा तो गधेके सींग जैसी असत्य है।

सम्यग्दृष्टिके जाननेमें ही निश्चय और व्यवहार ऐसे दो नय होते हैं, सम्यग्दृष्टिके यह दोनों नय सच्चे हैं। अज्ञानीका एक भी नय सच्चा नहीं होता। धर्मीके दो नयोंमेंसे जो निश्चयनय है वह तो सत्य वस्तुरूप दिखाता है और व्यवहारनय तो निमित्त आदिका ज्ञान कराता है। श्रुतज्ञानमें अनन्त नय समाते हैं परन्तु साधक जीव इन अनन्त नयोंको भेद करके नहीं जान सकता। प्रयोजन साधनेके लिये संक्षेपसे दो नय—एक स्वाश्रितस्वरूपको जाननेवाला निश्चयनय, और दूसरा पराश्रितभावको जाननेवाला व्यवहारनय इनमें निश्चयनयके अनुसार जो वस्तुस्वरूप है उसकी श्रद्धा–ज्ञान–अनुभवसे मोक्षमार्ग सधता है, क्योंकि वह सत्यार्थ है।

१७ सालसे भी छोटी उम्रमे यह बात बहुत अच्छे शब्दोंमे लिख गये हैं—

१. स्वद्रव्य और परद्रव्यको भिन्न भिन्न देखो।
२. स्वद्रव्यके रक्षक शीघ्र बनो हो जाओ।
३. स्वद्रव्यमे व्यापक शीघ्र बनो।
४. स्वद्रव्यके धारक शीघ्र बनो।
५. स्वद्रव्यमें रमक शीघ्र बनो।
६. स्वद्रव्यके ग्राहक शीघ्र बनो।
७. स्वद्रव्यकी रक्षाका लक्ष रखो।
८. परद्रव्यकी धारकता शीघ्र तजो।
९. परद्रव्यमे रमणता शीघ्र तजो।
१०. परद्रव्यकी ग्राहकता शीघ्र तजो।

—इसमे प्रारंभके सात बोलके द्वारा स्वद्रव्यका आश्रय करनेका दिखाया है, और पीछेके तीन बोलके द्वारा परद्रव्यका आश्रय छोडनेको कहा है। इस प्रकार दस बोलेंके द्वारा जैन सिद्धान्तका सारा रहस्य बतलाया है, थोडे शब्दोंमे बडी गम्भीर बात की है।

चैतन्यवस्तु रागादि आस्रवसे रहित है और अजीवकर्मसे भिन्न है, ऐसी अपनी चैतन्यवस्तुको अनुभवमे लेकर जब सम्यग्दर्शन हो तब निश्चयके साथके रागमे आरोप करके उसको व्यवहार कह सकते हैं। परन्तु जो रागसे भिन्न स्वतत्त्वको नहीं जानता और रागमे एकत्व मानता है उसको तो व्यवहार कहां रहा? उसको तो राग ही निश्चय हो गया, अर्थात् मिथ्यात्व हो गया। पुरुषार्थ

सिद्धिउपायमें कहते हैं कि— अज्ञानीको समझानेके लिये मुनीश्वर अभूतार्थ ऐसे व्यवहारका भी उपदेश देते हैं परन्तु जो जीव अकेले व्यवहारको ही परमार्थरूप समझ लेता है वह सच्चे उपदेशको नहीं समझता अतएव उसको देशना फलीभूत नहीं होती। भाई! तुझे परमार्थस्वरूप दिखानेके लिये व्यवहार कहा था, न कि व्यवहारको ही पकड़कर रखनेके लिये।

कहा है। जो स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं करता उसको न तो निश्चय होता है न व्यवहार। सम्यक्त्व सन्मुख जीव अरिहंतदेवके ऊपर लक्षके समयमें उस विकल्पमें अटकना नहीं चाहता था परन्तु अन्तरंग अपने सच्चे स्वरूपका निर्णय करके अन्तर्मुख होना चाहता था,—इसलिये उसको कारण अरिहन्तकी श्रद्धाको भी सम्यग्दर्शन कह दिया। परन्तु अपने अन्तर्मुख स्वभावकी ओर जो नहीं आता उसको तो ऐसा व्यवहार भी लागू नहीं होता।

यह छहढाला तो जैनधर्मका तत्त्वज्ञान करनेवाला पाठ्य पुस्तक है, बड़े या छोटे सभीको पढ़ने योग्य है; यह सुगम एवं सभी को समझमें आ जाय ऐसा है, और प्रयोजनभूत वीतराग-विज्ञानका स्वरूप इसमें समझाया है। अहो, वीतराग-विज्ञानका ऐसा शिक्षण तो प्रत्येक घरमें पढ़ाना चाहिए, इसके अतिरिक्त लौकिक पढ़ाईमें तो कुछ भी हित नहीं है। यह तो भगवान सर्वज्ञदेवका पढ़ाया हुआ वीतरागी शिक्षण है, यही शिक्षण सभी जीवोंके लिये अपूर्व हितकर है।

जिनके ज्ञानादि गुणोंका पूरा विकास हो चुका है और रागादि दोषोंका सर्वथा अभाव हो चुका है ऐसे सर्वज्ञ वीतराग ही सच्चे देव हैं, भेदज्ञानके द्वारा धर्मी दशाको जो साध रहे हैं ऐसे शुद्धोपयोगी संत सच्चे गुरु हैं, और ऐसे देव-गुरुसे प्रतिपादित तत्त्व सो शास्त्र है —सम्यग्दर्शनकी भूमिकामें ऐसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा होती है, सो व्यवहार है. इसके विरुद्ध किसी भी देव-गुरु-शास्त्रकी मान्यता व्यवहारमें भी नहीं होती। देव-

परन्तु सम्यग्दर्शनके सहकारीरूपसे भी वह नहीं होता, वह तो सम्यग्दर्शनसे विरुद्ध है। सच्चे देव-गुरुकी श्रद्धाका विकल्प-जो कि सम्यग्दर्शनका सहकारी है—वह भी मोक्षका सत्य कारण नहीं है। सत्य कारण तो भूतार्थस्वभावके आश्रयसे होनेवाली शुद्धात्माकी श्रद्धा ही है इसे ही 'सत्यार्थ कहते हैं। निश्चय कहो या सत्यार्थ कहो, वह मुख्य है, और दूसरा व्यवहार है वह गौण है, वह सत्यार्थ नहीं है परन्तु आरोप है उपचार है।

आत्मा जैसा सर्वज्ञस्वभाव है वैसे वह अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव है. आत्मा स्वयं ही आनन्दरूप है, रागसे उसका आनन्द नहीं है, अत रागके आश्रयसे सुख या आनन्द नहीं होता। इसीप्रकार इस आत्माका आनदस्वभाव कोई देव-गुरु-शास्त्र आदि दूसरोंके पास नहीं है, अत. दूसरोंके आश्रयसे वह प्रगट नहीं होता। जहा अपना आनन्द भरा है उसीमे एकताके द्वारा आनन्दका अनुभव होता है। अपना आनन्द अपनेमे ही भरा है, आनन्दरूप स्वयं आप ही है, और अपनेमे दृष्टि करनेसे उसका अनुभव होता है। जैसे ज्ञानस्वभाव आत्मामे है अतः आत्माके आश्रयसे सर्वज्ञता होती है उसमे अन्य किसीका आश्रय नहीं है. राग या देहके आश्रयसे सर्वज्ञता नहीं होता क्योंकि उसमे वह नहीं है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दका पिंड है, उसके आनन्दमे अन्य किसीका आश्रय नहीं है रागके या देहके आश्रयसे आनन्द नहीं होता क्योंकि उसमें आनन्द नहीं है। ज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव है उसके ही आश्रयसे वह प्रगट होता है. परन्तु जिसके स्वभावमे ज्ञान और आनन्द नहीं है उसके आश्रयसे वह प्रगट नहीं होता।

स्वरूपमें दृष्टि करके एकाग्र होनेसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है और उसकी पूर्णता होनेपर मोक्षदशा होती है। अंश और अंशी एक ही जातिके होते हैं, अंशीका अंश उसी जातिका होता है, सच्चे कारण-कार्य एक जातिके होते हैं अंश अपनी जातिके अंशीके आश्रयसे प्रगट होता है, परंतु विजातिके आश्रयसे नहीं होता। सच्चे ज्ञानका अंश ज्ञानके ही आश्रयसे प्रगट होता है, रागके आश्रयसे प्रगट नहीं होता। रागके सेवनसे तो रागका ही कार्य होगा परन्तु ज्ञान नहीं होगा। अंशीके साथमें एकता करके जो अंश प्रगट हुआ वही सच्चा अंश है। (पूर्णताके लक्षसे प्रारंभ वही सच्चा प्रारंभ है।) पूर्णताका लक्ष कहो या सम्यग्दर्शन कहो, वही मोक्षमार्गका प्रारंभ है। सारा आत्मा आनन्दस्वभाव है उसके अनुभवसे आनन्द ही होता है। रागके आश्रयसे आनंदका अनुभव कभी नहीं होता, क्योंकि जो आनन्द है वह रागका अंश नहीं है। उसीप्रकार ज्ञान और श्रद्धान् भी रागके आश्रयसे नहीं होते, क्योंकि वे ज्ञानादि रागके तो अंश नहीं हैं। रागके आश्रयसे तो राग होगा, मोक्षमार्ग नहीं होगा। मोक्षमार्ग रागरूप नहीं है।

देखो जी, यह सत्यार्थ मोक्षमार्ग! सच्चा मोक्षमार्ग रागसे रहित है। आत्माका ज्ञान व आनन्द रागसे रहित है। ज्ञान और आनन्द आत्माके मुख्य गुण हैं। 'चिदानंदाय नमः' इत्यादि मन्त्र आत्माके स्वभावको ही सूचित करते हैं, उसमें श्रद्धावीर्य आदि अनन्त गुण भी समाविष्ट हो जाते हैं। जिस गुणकी मुख्यतासे देखा जाय उसी गुणस्वरूप पूरा आत्मा दिखता है। आनन्दकी

निश्चयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी एकतारूप एक ही मोक्ष-मार्ग है, दो मोक्षमार्ग नहीं है। 'एक होत तीन कालमें परमार्थका पंथ।' एक निश्चयमोक्षमार्ग और एक व्यवहारमोक्षमार्ग—ऐसे दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है,—यह बात पं. टोडरमलजीने मोक्ष-मार्ग प्रकाशकमें बहुत अच्छे ढंगसे समझायी है। निश्चय मोक्ष-मार्गके अतिरिक्त अन्य किसीको मोक्षमार्ग कहना सो सच्चा मोक्ष-मार्ग नहीं है परन्तु मात्र उपचार है—ऐसा जानना। शुद्ध आत्म-तत्त्वको जानकर, उसकी श्रद्धा कर, उसके अनुभवसे ही मोक्ष होता है, मोक्षका अन्य कोई मार्ग नहीं है—नहीं है। [न खलु न खलु यस्माद् अन्यथा साध्यसिद्धि'।]

प्रवचनसारमें कहते हैं कि जो अतीतकालमें क्रमशः हुए वे सभी तीर्थंकर भगवन्तोंने इस एक ही प्रकारसे कर्मांशोंका क्षय किया, क्योंकि अन्य प्रकारका अभाव होनेसे मोक्षमार्गमें द्वैतका संभव ही नहीं है, एक ही मार्ग है। इस प्रकार शुद्धात्माके अनुभव द्वारा समस्त कर्मोंका क्षय करके सभी तीर्थंकर भगवन्तोंने तीनोंकालके मुमुक्षुओंके लिये भी इसी प्रकारका उपदेश दिया और बादमें मोक्षकी प्राप्ति की। अतः निश्चित होता है कि निर्वाणका कोई अन्य मार्ग नहीं है। ऐसे एक ही प्रकारके सम्यक्मार्गका निर्णय करके आचार्यदेव कहते हैं कि अहा, ऐसे स्वाश्रित मोक्षमार्गका उपदेश देनेवाले भगवन्तोंको नमस्कार हो। हमने ऐसे मोक्षमार्गका निर्णय किया है और उसकी भावनाका कार्य चल रहा है।

शुद्धात्मअनुभूतिरूप जो निश्चयरत्नत्रय उसके सिवाय दूसरा

कोई मोक्षका मार्ग नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों रूप एक मोक्षमार्ग है परन्तु जुदे जुदे तीन मोक्षमार्ग नहीं हैं। जहाँ सम्यग्दर्शन हो वहाँ सम्यग्ज्ञान भी साथमें होता ही है, और वहाँ अनन्तानुबन्धी कषायके अभावरूप चारित्रका अंश भी होता है। इसप्रकार शुद्ध रत्नत्रयरूप एक ही मोक्षमार्ग है हाँ, उस रत्नत्रयकी शुद्धिमें तारतम्यरूपसे अनेक प्रकार पड़ते हैं, तो भी उनकी जाति एकसी ही है रत्नत्रयकी जितनी शुद्धता है उतना ही मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं है।

प्रश्नः—अनेक जगह निश्चय और व्यवहार ऐसे दो प्रकारका मोक्षमार्ग कहा है, और आप तो मोक्षमार्ग एक ही कहते हो, तो [illegible]

है, अर्थात् निश्चयसे वास्तविक मोक्षमार्ग वह है, और वही पर, जो सच्चा मोक्षमार्ग तो नहीं है परन्तु मोक्षमार्गकी साथमें निमित्त-रूपसे विद्यमान है उसको भी मोक्षमार्ग कहना सो व्यवहार है। 'कारण सो ववहारो'—व्यवहारको निश्चयमोक्षमार्गका कारण कहना सो भी उपचार है अर्थात निमित्तरूप है ऐसा समझना। जैसे विना उपादानका निमित्त वह वास्तवमें निमित्त नहीं है, वैसे निश्चयकी अपेक्षासे रहित व्यवहार वह वास्तविक व्यवहार नहीं है। निश्चयके विना अकेला व्यवहार होता ही नहीं, अतः पहले अकेला व्यवहार हो और उसके द्वारा निश्चयकी प्राप्ति हो जाय—यह बात सच्ची नहीं है। इस प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों साथमें रहते हैं, तथापि उनमें सत्य मोक्षमार्ग तो एक ही है, दो नहीं।

मोक्षमार्गका सच्चा निर्णय करनेके लिये यह बात प्रयोजनभूत होनेसे विस्तारसे कही गई है। साधककी एक पर्यायमें निश्चय-व्यवहार दोनों साथमें रहते हैं, उनमें निश्चयरत्नत्रय तो सत्यार्थ मोक्षमार्ग है, और उसके अनुकूल जो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रका शुभ विकल्प है उसमें मोक्षमार्गका व्यवहार करना सो वह उपचार है, वह सत्यार्थ नहीं है। एक ही सत्य मोक्षमार्ग और दूसरा सत्य नहीं परन्तु उपचार,—ऐसे मोक्षमार्गके स्वरूपका निर्धार करना चाहिए। निश्चय और व्यवहार दोनों मिलकर एक मोक्षमार्ग है—ऐसा नहीं है। जो निश्चय है वह एक ही मोक्षमार्ग है।

卐 शुद्ध आत्माका श्रद्धान् वह एक ही सम्यग्दर्शन है,

卐 शुद्ध आत्माका ज्ञान वह एक ही सम्यग्ज्ञान है,

है, अर्थात् निश्चयमें वास्तविक मोक्षमार्ग वह है, और वही पर, जो सच्चा मोक्षमार्ग तो नहीं है परन्तु मोक्षमार्गकी साथमें निमित्त-रूपसे विद्यमान है उसको भी मोक्षमार्ग कहना सो व्यवहार है। 'कारण सो ववहारो'—व्यवहारको निश्चयमोक्षमार्गका कारण कहना सो भी उपचार है अर्थात् निमित्तरूप है ऐसा समझना। जैसे बिना उपादानका निमित्त वह वास्तवमें निमित्त नहीं है, वैसे निश्चयकी अपेक्षासे रहित व्यवहार वह वास्तविक व्यवहार नहीं है। निश्चयके बिना अकेला व्यवहार होता ही नहीं, अतः पहले अकेला व्यवहार हो और उसके द्वारा निश्चयकी प्राप्ति हो जाय—यह बात सच्ची नहीं है। इस प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों साथमें रहते हैं, तथापि उनमें सत्य मोक्षमार्ग तो एक ही है, दो नहीं।

मोक्षमार्गका सच्चा निर्णय करनेके लिये यह बात प्रयोजनभूत होनेसे विस्तारसे कही गई है। साधककी एक पर्यायमें निश्चय-व्यवहार दोनों साथमें रहते हैं, उनमें निश्चयरत्नत्रय तो सत्यार्थ मोक्षमार्ग है, और उसके अनुकूल जो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रका शुभ विकल्प है उसमें मोक्षमार्गका व्यवहार करना सो वह उपचार है, वह सत्यार्थ नहीं है। एक ही सत्य मोक्षमार्ग और दूसरा सत्य नहीं परन्तु उपचार,—ऐसे मोक्षमार्गके स्वरूपका निर्धार करना चाहिए। निश्चय और व्यवहार दोनों मिलकर एक मोक्षमार्ग है —ऐसा नहीं है। जो निश्चय है वह एक ही मोक्षमार्ग है।

❀ शुद्ध आत्माका श्रद्धान् वह एक ही सम्यग्दर्शन है,

❀ शुद्ध आत्माका ज्ञान वह एक ही सम्यग्ज्ञान है;

मोक्षमार्गका सच्चा निर्णय करनेके लिये यह बात प्रयोजनभूत होनेसे विस्तारसे कही गई है। साधकको एक पर्यायमें निश्चय-व्यवहार दोनों साथमें रहते हैं, उनमें निश्चयरत्नत्रय तो सत्यार्थ मोक्षमार्ग है, और उसके अनुकूल जो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रका शुभ विकल्प है उसमें मोक्षमार्गका व्यवहार करना सो वह उपचार है, वह सत्यार्थ नहीं है। एक ही सत्य मोक्षमार्ग और दूसरा सत्य नहीं परन्तु उपचार.—ऐसे मोक्षमार्गके स्वरूपका निर्धार करना चाहिए। निश्चय और व्यवहार दोनों मिलकर एक मोक्षमार्ग है —ऐसा नहीं है। जो निश्चय है वह एक ही मोक्षमार्ग है।

- शुद्ध आत्माका श्रद्धान् वह एक ही सम्यग्दर्शन है,
- शुद्ध आत्माका ज्ञान वह एक ही सम्यग्ज्ञान है,

निश्चयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका व्याख्यान

निराकुल स्वरूप जो मोक्ष वह आत्माका हित है, और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका मार्ग है जीवको अपने हितके लिये ऐसे मोक्षमार्गमें लगना चाहिए—ऐसा पहली गाथामें कहा; अब दूसरी गाथामें उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका व्याख्यान करते हैं—

[गाथा]

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि सम्यक्त्व भला है;
आपरूपको जानपनो सो सम्यक्‌ज्ञान कला है।
आपरूपमें लीन रहे थिर सम्यक्‌चारित सोई;
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियतको होई ॥ २ ॥

—यद्यपि सम्यग्दर्शनके तीन भेद हैं, सम्यग्ज्ञानके पांच भेद हैं और सम्यक्चारित्रके पाँच भेद हैं, तथापि इन सबमें स्वद्रव्यके आश्रयका प्रकार एक ही है, दर्शन-ज्ञान-चारित्रका कोई भी अंश परद्रव्यके आश्रित नहीं है, और इससे कहीं भी राग नहीं है।

भगवान आत्मा महान पदार्थ है उसमें अंतर्मुख श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है, उससे भिन्न और कोई मोक्षमार्ग कहना वह तो वचनका विलास है,—उसका वाच्य तो निमित्त या राग है, परन्तु मोक्षमार्गका सत्य स्वरूप वह नहीं है। सत्य मोक्षमार्ग शुद्ध आत्माकी अनुभूतिमें ही समाता है, वह निर्विकल्प है, उसमें कोई विकल्प नहीं-राग नहीं। ऐसे मोक्षमार्गका प्रारम्भ चौथे गुणस्थानसे होता है। श्री समन्तभद्रस्वामीने 'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थ निर्मोहो'.... ऐसा कहकर सम्यग्दृष्टि-गृहस्थको भी मोक्षमार्गमें स्वीकार किया है। अतः यदि कोई ऐसा कहे कि चौथे-पाँचवें-छठवें गुणस्थानमें एकान्त व्यवहार मोक्षमार्ग ही होता है और बादमें सातवें गुणस्थानसे अकेला निश्चयमोक्षमार्ग होता है,—तो यह बात सत्य नहीं है। चौथे गुणस्थानसे ही दोनों एक साथ है। उनमें शुद्धताका जितने अंश है वह सच्चा मोक्षमार्ग है, और जो रागादि है वह मोक्षमार्ग नहीं है। ऐसे सभी प्रकारसे पहचानकर सत्य मोक्षमार्गको अंगीकार करना चाहिए।

अहो! ऐसा परम-सुन्दर स्वाधीन मोक्षमार्ग, वही महान सुखका कारण है—ऐसा जानकर बहुमान पूर्वक उसका सेवन करो।

निश्चयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका व्याख्यान

निराकुल सुखरूप जो मोक्ष वह आत्माका हित है, और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका मार्ग है; जीवको अपने हितके लिये ऐसे मोक्षमार्गमें लगना चाहिए—ऐसा पहली गाथामें कहा, अब दूसरी गाथामें उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका व्याख्यान करते हैं—

[गाथा]

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि सम्यक्त्व भला है;
आपरूपको जानपनो सो सम्यग्ज्ञान कला है।
आपरूपमें लीन रहे थिर सम्यक्चारित सोई;
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियतको होई ॥ २ ॥

पहचानकर उसके ध्यानमें निरन्तर लगे रहना चाहिए। यह निश्चय मोक्षमार्ग कहा। अब व्यवहारमोक्षमार्ग जोकि निश्चयमोक्षमार्गमें निमित्तरूप हेतु है—उसका कथन आगेके श्लोकमें करेंगे।

परद्रव्योंसे भिन्न, परसन्मुख रागादिभावोंसे भिन्न और अपने स्वभावोंसे अभिन्न ऐसे अपने आत्माकी श्रद्धा-रुचि सो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थदशामें हो, व्यापार-धंधा, राजपाटमें हो, शुभाशुभभाव होते हों, तो भी अन्तरकी दृष्टिमें वह अपने आत्माको इन सबसे भिन्न शुद्ध चैतन्यभावरूप ही देखता है। वह परद्रव्यमें नहीं रहा, उसका सम्बन्ध होते हुए भी उससे भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा मैं हूँ—इसप्रकार वह स्वद्रव्यकी श्रद्धा करता है, यह सम्यक्त्व भला है-हितरूप है-कल्याणरूप है। निश्चय सम्यग्दर्शनको भला कहा है, वही सत्यार्थ है, वही सच्चा मोक्ष-मार्ग है।

आत्माकी रुचिको सम्यक्त्व कहा, अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शनका विषय अकेला स्वतत्त्व है। परसे भिन्न अपने स्वतत्त्वको लक्षमें लेनेसे, रागसे भी भिन्न अनुभव होता है। ऐसे अनुभवपूर्वक आत्माकी श्रद्धा सो निश्चय सम्यग्दर्शन है, इसमें अकेले स्वतत्त्वमें दृष्टि (एकत्वबुद्धि, तन्मयता) है। स्वमें लक्ष करते ही परद्रव्य और परभावोंके साथ एकत्वबुद्धि छूट जाती है। इस प्रकार स्वमें स्व-बुद्धिरूप आत्मरुचि वही सम्यग्दर्शन है।

'आपमें रुचि'—आप अर्थात् अपना आत्मा, उसका स्वरूप पहचानकर, निर्विकल्प स्वसंवेदन सहित उसकी श्रद्धा करना चाहिए।

सम्यग्दर्शन कहा जाता है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें तो शुद्धात्माकी स्वसत्ताका ही अवलंबन है, उसमें परका अवलंबन किंचित् मात्र नहीं है। ऐसा स्वाधीन आत्माश्रित निश्चय मोक्षमार्ग है।

परसे भिन्न आत्माका वास्तविक स्वरूप क्या है, उसके श्रद्धा-ज्ञानके बाद ही उसमें लीनता हो सकती है; निजस्वरूपमें लीनताके द्वारा जितनी वीतरागी शुद्धता हुई उतना सम्यक्चारित्र है। व्रत संबंधी जो शुभ विकल्प है वह चारित्र नहीं है, वह तो चारित्र-दशाके साथमें निमित्तरूप है। वीतरागता ही चारित्र है, राग चारित्र नहीं है। राग रहित रत्नत्रय ही मोक्षका कारण है, राग तो आस्रवका ही कारण है, वह मोक्षका कारण नहीं है।

अहा, ऐसा स्पष्ट वीतरागी मार्ग! उसको भूलकर अज्ञानी लोगोंने रागमें मोक्षमार्ग मान लिया है। रागमें मोक्षमार्ग मानना यह तो, कांचके टुकड़ेमें अति मूल्यवान चैतन्यहीरा मांगने जैसी बात है। जो रागसे मोक्षकी प्राप्ति होना मानता है उसने तो राग जितना ही मोक्षका मूल्य समझा है, वीतरागी आनन्दरूप मोक्षकी उसे पहचान नहीं है। भाई, पूर्ण आनन्दमय मोक्षपद ऐसा नहीं है कि वह तुझे रागसे मिल जाय। वीतरागी आनन्दरूप मोक्षका प्राप्त करनेका मूल्य भी कोई अलौकिक है। अखंड चैतन्यस्वभावका स्वीकार करके उसके श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभावसे ही मोक्ष सधता है, इससे जुदा दूसरा कोई साधन नहीं है।

अहा, ज्ञान आनन्दके अनन्त किरणोंसे चमचमाता हुआ चैतन्य-

विकल्पसे वे भिन्न हैं। विकल्परूप व्यवहारभावोंसे आत्मा भिन्न होने पर भी उनके साथ आत्माको एकमेक मानना वह अज्ञानी जीवोंका मिथ्या प्रतिभास है, और उसका फल संसार है। समस्त परभावोंसे भिन्न आत्माको देखना–जानना–अनुभव करना यह मोक्षका मार्ग है। भव्य जीवोंको ऐसे मोक्षमार्गका सदा सेवन करना चाहिए। शुभरागके कालमें भी धर्मी उस रागको मोक्षमार्ग नहीं समझते परन्तु उस समय भी स्वभावके आश्रयसे रत्नत्रयकी जितनी शुद्धता हुई उसीको वे मोक्षमार्ग समझते हैं।

इस प्रकार सच्चा सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र ही मोक्षमार्ग है, सच्चा अर्थात् निश्चय, 'जो सत्यारथरूप सो निश्चय' और उस निश्चयके साथ भूमिकाके योग्य व्यवहार होता है—उसका कथन आगेकी गाथामें कहते हैं।
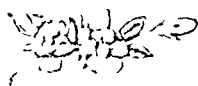
व्यवहार सम्यग्दर्शनका वर्णन

किसी भी कुमार्गादिका आदर करनेका भी नहीं रहता। यह भाव भी कुदेवका सेवन करनेसे अपनेआप आ गई। यहां तो आत्माकी पहिचान करके जो जीव सम्यग्दृष्टि हुआ उसको नवतत्त्वमें भी तत्त्वश्रद्धा कैसी होती है-इसका वर्णन है।

नव तत्त्वकी श्रद्धा तभी सच्ची हुई जब कि पर द्रव्यसे भिन्न और रागादि आस्रवोंसे भिन्न अपने शुद्धात्माकी रुचि करके निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट किया और तभी भूतार्थसे नवतत्त्वोंको जाना। धर्मका प्रारम्भ ऐसे सम्यग्दर्शनसे होता है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो शुद्ध परिणति है, वह संवर-निर्जरा है, और व्यवहार सम्यग्दर्शनादिमें शुभराग है, वह आस्रव है। अन्तर-अनुभव सहित ज्ञायक आत्माकी प्रतीतिरूप जो शुद्ध परिणति हुई वह तो सिद्धदशामें भी रहती है चतुर्थ गुणस्थानसे उसका प्रारंभ हो जाता है। ऐसे सम्यग्दर्शनके साथमें नवतत्त्वकी विपरीतता नहीं रह सकती। वह पुण्य-आस्रवको संवर-निर्जरा या मोक्षका कारण नहीं मानता, वह अजीवतत्त्वके भावको जीवका नहीं मानता। सभी तत्त्वोंको जैसे हैं वैसे ही जानता है।

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष—ये सात तत्त्व सर्वज्ञ भगवानने देखे हैं और जिनवाणीमें उनका उपदेश है।

* जीव तत्त्व *

जगतमें अनन्त जीव हैं। स्वभावसे सभी जीव भिन्न भिन्न एकसमान हैं। परन्तु अवस्थाकी अपेक्षासे जीवोंके तीन प्रकार

जीवके किसी प्रकारको अजीवमें न मिलाना। ज्ञान है सो जीवका गुण है, वह इन्द्रियका गुण नहीं है, जड़ इन्द्रियोंसे ज्ञान नहीं होता। इतना तो व्यवहारश्रद्धामें आ जाता है। इसमें भी जिसको विपरीतता हो उसे तो व्यवहार तत्त्वश्रद्धा भी सच्ची नहीं होती। जीव-अजीव आदि तत्त्व जैसे हैं वैसे जाने विना वीतराग विज्ञान नहीं होता और मोक्षमार्ग नहीं मिलता। अरे, अकेले व्यवहार तत्त्वके प्रकारोंको जाननेसे भी मोक्षमार्ग नहीं मिलता। शुद्धनयसे अपने अन्तरमें अखंड चेतनारूप शुद्ध आत्माको स्व-विषय बनाये विना पर-विषयोंका सच्चा ज्ञान नहीं होता, अर्थात् सच्चा व्यवहार नहीं होता। स्वके ज्ञानसे रहित परके ज्ञानको व्यवहार भी नहीं कहते। मोक्षमार्गमें निश्चय सहित है व्यवहारकी यह बात है, अतः स्वका सच्चा ज्ञान साथमें रखकर परके ज्ञानकी बात है। स्वको जाने विना अकेले परको जानना चाहे तो परमें एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्व हो जायगा, क्योंकि परसे भिन्न जो अपना अस्तित्व है वह तो उसके ज्ञानमें या प्रतीतिमें आया ही नहीं।

आस्रव तथा बंधतत्त्व *

मिथ्यात्वादि भावोंसे कर्मका आस्रव तथा बंध होता है, पाप और पुण्यका भी आस्रव तथा बंधमें समावेश होता है। पुण्य-पाप आदि आस्रव हैं उनको आस्रवरूप जानना, परन्तु उनको संवरमें न मिलाना, यह आस्रवतत्त्वकी श्रद्धा है। आस्रवका कोई भी प्रकार जीवके लिये हितरूप नहीं है, या मोक्षका कारण नहीं है-ऐसा जानना चाहिए। जो किसी प्रकारके भी आस्रवको हितरूप माने

खिर जाते हैं, उनका नाम निर्जरा है। [illegible] निर्जरा होती है, दूसरी क्रियासे निर्जरा नहीं होती। शरीरका नाश होना या उसमें रोग लगना यह निर्जराका कारण नहीं है, आत्माका धर्म नहीं है। चैतन्यकी विशुद्धतारूप जो तप उससे सच्ची निर्जरा होती है और वह धर्म है। इसकी विधि प्रकार जो सविपाक निर्जरा होती है वह तो सभी जीवोंके होती है, उसके साथ धर्मका सम्बन्ध नहीं है, और यह निर्जरा मोक्षका कारण नहीं है।

* मोक्ष तत्त्व *

जहां संपूर्ण निराकुल सुख व ज्ञान है, और जिसमें कर्मका, रागका या दुःखका सर्वथा अभाव है ऐसी मोक्षदशा है। मोक्ष क्या है, और उसका उपाय क्या है यह पहचानना चाहिए। रागके सर्वथा अभावरूप जो मोक्ष उसका उपाय भी राग रहित ही है। मोक्षके उपायरूप सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र तीनों ही रागरहित है। राग मोक्षका उपाय नहीं है। रागको जो मोक्षका साधन मानता है उसको मोक्षतत्त्वकी पहचान नहीं है। मोक्षका कारण और बन्धका कारण भिन्न भिन्न है, उनको भिन्नरूप जानना चाहिए। जो बन्धका कारण हो वह मोक्षका भी कारण नहीं होता, और जो मोक्षका कारण हो वह बन्धका भी कारण नहीं होता। ऐसे सात तत्त्वोंकी पहचानमें तो सबका स्पष्टीकरण हो जाता है। सर्वज्ञ भगवानके श्रीमुखसे सात तत्त्वका जो स्वरूप निकला, उसको जाननेसे सारे विश्वके तत्त्वोंका ज्ञान हो जाता है। जीव क्या है? अजीव क्या है? कैसे भावसे जीवको सुख होगा? कैसे भावसे जीवको

यह तो शुभ-अशुभमें चक्कर खाता ही रहेगा,—कहाँ? कि संसारमें ही। सम्यग्दर्शनके बिना रागको या देहकी क्रियाको जो सामायिकादि धर्म मान लेते हैं उनको तो जीव-अजीवकी भिन्नताका भी भान नहीं है। रागसे भिन्न आत्माका भान ही जिसको नहीं है उसको रागके अभावरूप सामायिक कैसे होगी?

प्रश्नः—शक्कर तो जब भी खावे तब मीठी ही लगे, अंधेरेमें भी वह मीठी लगे, वैसे सामायिकमें तो धर्म ही होता है, सामायिक करनेवाला अज्ञानी भी हो?

उत्तरः—अच्छी बात है भाई, शक्कर मीठी ही लगे, परन्तु होनी तो शक्कर चाहिए न! शक्करके बदलेमें पत्थरके टुकड़ेको शक्कर मानकर खायेगा तो क्या होगा? वैसे सामायिकसे धर्म होता है यह बात सच्ची है, परन्तु होनी तो वह सामायिक चाहिए न? सामायिकके बदलेमें यदि राग-द्वेष-अज्ञानभावोंको सामायिक मान लेगा तो उसको धर्म तो कुछ नहीं होगा, परन्तु अज्ञानकी पुष्टि होगी। सामायिकके नाम पर रागका सेवन करनेसे तो कुछ धर्म नहीं होता। राग रहित समभावी-ज्ञानस्वरूपी आत्मा कैसा है, जिसे उसकी पहचान हो और ऐसे आत्माके ध्यानमें एकाग्रताके उद्यमसे राग-द्वेषके विषमभाव उत्पन्न ही न हो और वीतरागी समभाव रहे उसीका नाम है सामायिक धर्म, और वही मोक्षका कारण है। ऐसी सामायिकको जो पहचाने भी नहीं, रागसे भिन्न आत्माको जाने भी नहीं ऐसे अज्ञानीको कभी सामायिक नहीं होती। जैसे कोई खाता हो फिटकरी और माने कि मैं शक्कर खा रहा हूँ—तो

परन्तु सत्यके बिना व्यवहार [illegible] नहीं हो गया। जो व्यवहारसम्यग्दर्शन है [illegible] नहीं है, वह तो विकल्प सहित [illegible] है। जो निश्चय सम्यग्दर्शन है वह श्रद्धागुणकी शुद्ध पर्याय है, [illegible] है। श्रद्धामें विकल्प नहीं होता, वह तो निर्विकल्प ही होता है।

मोक्षशास्त्रके पहले ही सूत्रमें मोक्षमार्गरूपसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका कथन किया है, वे तीनों निश्चय हैं। जिस तत्त्वार्थ-श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहा उसकी साथमें भूतार्थदृष्टिरूप अपने शुद्धात्माकी श्रद्धा भी है, अतः वह निश्चयसम्यग्दर्शन है और वह मोक्षमार्गका अवयव है। व्यवहार तत्त्वके भेदोंका लक्ष या विकल्प वह मोक्षमार्ग नहीं है, परन्तु निश्चयके साथवाले व्यवहार सम्यग्दर्शनमें भेदरूप तत्त्वोंका जानपना होता है उसका यहां वर्णन है। उनमेंसे जीवतत्त्व और उसके भेदोंका वर्णन आगेकी तीन गाथाओंमें करते हैं।
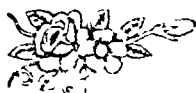
विश्वमें भिन्न-भिन्न अनन्त जीव हैं, प्रत्येक जीवका लक्षण ज्ञानचेतना है। अवस्थामें वे जीव तीन प्रकाररूपसे परिणमन करते हैं, उनका स्वरूप यहाँ दिखाया है—

* बहिरात्माका स्वरूप *

जो अपने अन्तरंगचेतनस्वरूपको भूलकर भ्रममें शरीर और जीवको एक मान रहा है वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है, वह तत्त्वोंमें मूढ़ है। ऐसे बहिरात्म जीव अनन्त हैं, जगतके जीवोंमेंसे बहुत भाग मिथ्यादृष्टि—बहिरात्मा हैं। परन्तु यह बहिरात्मपना जीवका सच्चा स्वरूप नहीं है, अतः उसे छोड़कर जीव स्वयं अंतरात्मा तथा परमात्मा हो सकता है।

ज्ञान और [illegible] जिसमें [illegible] है वह [illegible] है,
उसकी संगतासे [illegible] जो [illegible] होता है व
पुण्य पाप-आस्रव [illegible] जाता है।

—इस प्रकार तत्त्वका यथार्थ करके समझे तो मोक्षमार्गका सच्चा निर्णय अवश्य होता है। गागरमें सागरकी तरह इस छहढाला जैसी छोटी पुस्तकमें अनेक शास्त्रका सार भर दिया है। इसमें पंडितजीने पूर्वाचार्योंके उपदेश अनुसार कथन किया है।

साततत्त्वमें जीवतत्त्व कैसा है—उसका कथन चल रहा है। विदेह क्षेत्रोंमें देह सहित अरिहंत भगवंत साक्षात् बिराजते हैं, यहां भरतक्षेत्रमें भी ढाईहजार वर्ष पहले अरिहंत भगवान महावीर साक्षात् विचरते थे उन भगवंतोंने जीवादि तत्त्वोंका जैसा स्वरूप कहा वैसा ज्ञानी सन्तोंने झेलकर स्वयं अनुभव किया और शास्त्रमें कहा, वही यहां कहा जाता है। संस्कृत भाषामें सिद्धान्तसूत्रोंकी सबसे प्रथम रचना करनेवाले श्री उमास्वामी आचार्य वीतरागतासे झूलनेवाले परम दिगंबर सन्त थे और कुंदकुंदाचार्यदेवके वे शिष्य थे, उनके द्वारा रचित तत्त्वार्थसूत्र जैनसिद्धान्तकी गीता जैसा है, उसके ऊपर 'सर्वार्थसिद्धि' 'राजवार्तिक' 'श्लोकवार्तिक' जैसी बड़ी बड़ी टीकायें श्री पूज्यपादस्वामी, अकलंकस्वामी और विद्यानंदीस्वामी जैसे

उन्हें भी 'यह राजा आया' ऐसा उपचारसे कहा जाता है, सच्चा राजा तो वे नहीं, दूसरा है। वैसे शुद्ध आत्माकी दृष्टिरूप निश्चय-सम्यक्त्व वह तो मोक्षमार्गमें राजाके समान है, परन्तु उसके साथमें नवतत्त्वकी प्रतीतको देखकर उसको भी 'यह सम्यग्दर्शन है' ऐसा उपचारसे कहा जाता है, सच्चा सम्यग्दर्शन तो वह नहीं, दूसरा है। परन्तु उसके साथमे नवतत्त्वके जो विकल्प होते हैं वे जैसे व्यवहारमे दिखाये वैसे ही होते हैं, उनसे विरुद्ध नहीं होते। व्यवहारमें भी जो तत्त्व सर्वज्ञदेवने दिखाये हैं उनसे विपरीत मान्यता धर्मीको नहीं होती। अहो, यह तो निश्चय-व्यवहारकी संधि सहित अलौकिक जिनमार्ग है,—वीतराग भगवंतों जिस मार्ग पर चले उसी मार्गमे चलनेकी यह बात है। वीतरागी दृष्टिसे ही उसका प्रारंभ होता है, रागसे उसका प्रारंभ नहीं होता। जिसने अपने श्रद्धा ज्ञानमें पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माको झेला है, अनुभूतिके द्वारा अन्तरमे अपने परमात्मस्वरूपका अनुभव किया है वह अन्तरात्मा मोक्षमार्गमें चलनेवाला है; वह अपनी पर्यायको भी जा[नता] है। पहले अज्ञानदशामे बहिरात्मपना था, तब मैं एकान्त दु[ःखी] था, उस दशाको छोड़कर अब अन्तरात्मपना हुआ है और आत्मि[क] सुखका अंश अनुभवमे आया है, अब शुद्धात्माके ही ध्यानसे [पूर्ण] सुखस्वरूप परमात्मदशा अल्पकालमें होगी। इस प्रकार बहिरात[्मा] अन्तरात्मा और परमात्मा ऐसे तीन भेदसे जीवको पहचानना [वह] व्यवहारश्रद्धा है। यहाँ संक्षेपसे प्रयोजनरूप ये तीन प्रकार [कहे]; वैसे तो चौदह गुणस्थानके अनेक प्रकार हैं, एकेन्द्रियादि मार्गणा[की] अपेक्षासे अनेक प्रकार हैं, ऐसे अनेक प्रकारके पर्यायभेदसे जीव

चेतनस्वरूपको जानने[illegible] है, [illegible] रागको मोक्षमार्ग नहीं मानते। उनमें [illegible] गुणस्थान तकके उत्तम अन्तरात्मा तो शुद्धोपयोगी होकर अपने निर्विकल्प आनन्दका ही अनुभव कर रहे हैं, परमात्मदशा उन्हें अतीव निकट है। शुद्धोपयोगी होकर अन्तर्में चैतन्यपिंडका साक्षात् अनुभव कर रहे हैं। शेष अन्तरात्माओंको भी ऐसे आत्माका भान तो है, निर्विकल्प ध्यान कभी कभी होता है।

अरे, अन्तरात्माकी पहचान भी बहुत सूक्ष्म है; उसकी पहचाननेसे अपनेको भी जीव अजीवका भेदज्ञान हो जाता है।

* देहादि बाह्यको आत्मा माने सो बहिरात्मा।
* परसे भिन्न अन्तरमें आत्मस्वरूपको जाने सो अन्तरात्मा
* उत्कृष्ट–परम ज्ञान–आनन्ददशाको प्राप्त सो परमात्मा।

आत्माकी ऐसी तीन दशाको पहचानकर, बहिरात्मपनेको छोड़कर और अन्तरात्मा होकर परमात्मपदको साधना। परमात्माकी पहचान अन्तरात्माको ही होती है, बहिरात्मा उसे नहीं पहचान सकता बहिरात्मा तो शरीरको ही देखता है।

शरीर और मैं भिन्न हूं—ऐसी शरीरसे भिन्नता भी जिसको नहीं दिखती वह रागसे भिन्न होनेरूप मोक्षमार्गमें कैसे आयेगा अन्तरमें चेतनभाव रागसे भी भिन्न है—ऐसा भान किये बिना मोक्षमार्ग नहीं होता।

मोक्षमार्गमें वर्तनेवाले मुनिओंमें भी शुद्धोपयोगी मुनिओंको उत्तम अन्तरात्मा कहा और शुभोपयोगी मुनिओंको मध्यम अन्तरात्मा

अहो, चैतन्यमूर्ति आत्माकी दृष्टिके धारक सम्यग्दृष्टि जीवोंकी दशा कोई अटपटी आश्चर्यकारक लगती है। कोई जीव नरकमें सम्यग्दृष्टि हो, बाहरमें तो उसे नारकीओंके द्वारा घोर दुःख हो रहा हो, परन्तु अंतरमें उसी समय भिन्न चेतनामें उसे आत्माके सुखरसकी गटागटी चलती है. जैसे गन्नेका रस गटक-गटक पीवे वैसे अन्तरकी चेतनामें उसे सुखरसकी गटागटी चलती है- ऐसी सम्यग्दृष्टिकी परिणति अटपटी है।

कोई जीव स्वर्गमें सम्यग्दृष्टि हो वहां बाह्यमें तो अनेक देवियां के साथ वह क्रीड़ा करता हो, उस प्रकारका राग भी होता हो, किन्तु उस परिणतिसे उसको सदा हटाहटी है अर्थात् धर्मीकी चेतना उससे अलग ही अलग रहती है।—ऐसी धर्मीकी विचित्र परिणति है।

अनेक प्रकारके कर्मफल भोगते हुए भी ज्ञान वैराग्यशक्तिके बलसे उसे कर्म सदैव घटते ही रहते हैं; सदन-निवासी अर्थात् गृहवासी होते हुए भी अंतरंगमें उससे उदासीनता है इस कारण आस्रवकी उसको छटाछटी है-आस्रव छूटते ही जाते हैं। जो क्रिया अज्ञानीके भवकी हेतु होती है वही क्रिया चैतन्यकी अंतर्दृष्टिके कारण सम्यग्दृष्टिको बंधकी झटाझटी करती है अर्थात् उसे निर्जरा ही होती है।

नरकगति, तिर्यंचगति, स्त्रीपर्याय, नपुंसकपर्याय, विकलत्रय आदि ४१ प्रकृतियोंकी तो सम्यग्दृष्टिको निरंतर कटाकटी हो गई है अर्थात् यह ४१ प्रकृतियांका उसे बंधतां नहीं है।

यह अविरत सम्यग्दृष्टि यद्यपि संयमको धारण नहीं कर सकता तथापि उसके अंतरमें संयम धारण करनेकी चटापटी रहती है, निरंतर संयमभावना रहती है।

अहो, सम्यग्दृष्टिके ऐसे प्रशंसनीय गुणोंका खजाना, उसका दौलतरामजीको सदैव रटन रहता है।

अहा, चैतन्यमूर्ति आत्माकी दृष्टिके धारक अंतरात्मा–सम्यग्दृष्टि जीवोंकी दशा कोई अद्भुत अचिंत्य है। उसकी पहचान करनेसे भी अपने आत्मस्वरूपकी अचिंत्य महिमा लक्षमें आ जाती है।

यह अंतरात्मा उत्कृष्ट हो, मध्यम हो या सबसे छोटा जघन्य हो परन्तु शुद्धात्माकी प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन सभीके समान है; प्रतीतमें फर्क नहीं है, सभी अंतरात्मा भूतार्थदृष्टिवंत है, शुद्ध चैतन्यकी दृष्टिके धारक है। राग होने पर भी रागसे पार उनकी ज्ञान चेतना है, जिसे कोई विरले ही पहचानते हैं।

भावलिंगी मुनिओंमे भी जो निर्विकल्प ध्यानमे लीन है ऐसे शुद्धोपयोगीको तो उत्तम अंतरात्मामे गिने और शुभोपयोगी मुनिको मध्यम अंतरात्मामें गिने। अरे, महाव्रतादिकी कोई शुभवृत्ति आवे वह भी उत्तम अंतरात्मामें नहीं टिकती तब दूसरे रागकी क्या बात? प्रवचनसारमे भी कहा है कि मोक्षमार्गमें शुद्धोपयोगी मुनि मुख्य है —अग्रसर है और शुभोपयोगी मुनिको तो उनके पीछे पीछे लिया है। यह दोनों मोक्षमार्गी-परमेष्ठी; उनमे शुभवाले मुनि भी भावलिंगी हैं उनकी बात है। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं है उसको तो मोक्षमार्गमें गिना ही नहीं, वह तो बंधमार्गमें चलनेवाला बहिरात्मा है।

बहिरात्मा अंतरात्मा परमात्मा—इन तीन प्रकारमें जगतके सभी जीव आ जाते हैं। जीवतत्त्वकी श्रद्धामें उनकी पहचान समा जाती है। जो स्वयं शुद्धोपयोगमें लीन हैं उसको तो दूसरे जीवका विचार ही उस समय नहीं है, एवं तीन भेदका लक्ष भी नहीं है, किन्तु जो सविकल्प दशामें है वह व्यवहार जीवकी श्रद्धामें ऐसे त्रिविध आत्माका स्वरूप विचारता है। ऐसा यथार्थ विचार करनेवाला अंतरात्मा है। बहिरात्माके या परमात्माके ऐसा विचार नहीं होता, क्योंकि बहिरात्मा तो उसका सच्चा स्वरूप नहीं जानता और परमात्माको कोई विकल्प नहीं है। यह तो साधकके निश्चय सहित व्यवहार कैसा होता है उसकी बात है।

अंतरात्माकी परमार्थदृष्टिमें अर्थात् शुद्धनयमें तो एक अखंड ज्ञायकभावरूप ही आत्माका अनुभव है, तीन प्रकारकी पर्यायके भेद उसमें नहीं आते हैं। जो शुद्धदृष्टिसे अंतरात्मा हुआ वह व्यवहार में जीवकी पर्यायके प्रकारोंको भी जैसे हैं वैसे जानता है। जीव स्वयं अंतरात्मा होकर तीन भेदोंको जानता है; परन्तु स्वयं बहिरात्मा रहकर तीन प्रकारके आत्माका सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता।

छठवें-सातवें गुणस्थानवाले भावलिंगी मोक्षमार्गी मुनि ऐसा जानते हैं कि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव भी मोक्षमार्गी है, जैसे मैं मोक्षमार्गी हूं वैसे यह भी मोक्षमार्गी है, भले अल्प हो (जघन्य हो) तो भी वह है तो मोक्षके ही मार्गमें। श्री कुन्दकुन्दस्वामीने मोक्षप्राभृतमें उसको धन्य कहा है। अहा! छट्ठे गुणस्थानवर्ती परमेष्ठी मुनि चौथे गुणस्थानवाले गृहस्थको मोक्षमार्गमें स्वीकार करते

इस प्रकार [illegible] परमात्मा [illegible] है। [illegible] को कहते हैं: परमात्माके दो प्रकार—एक सिद्ध परमात्मा, दूसरा अरिहंत परमात्मा। सिद्ध भगवान तो अशरीरी, [illegible] अनन्त सिद्ध रहे हैं, उन्हें शरीर न होनेसे 'निकल परमात्मा' कहते हैं। और अरहंत भगवान [illegible] तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानमें शरीरसहित विराजते हैं, उनको सकल परमात्मा कहा जाता है। [कल = शरीर, उससे सहित सो सकल, उससे रहित सो निकल] केवलज्ञानादि गुण तो दोनों परमात्माके समान हैं। अहा, जिनकी पहचानसे आत्माके सच्चे स्वरूपकी पहचान हो जाय ऐसे परमात्माके महिमाकी क्या बात!

परमात्मपदके साधनेवाले मुनिओंकी दशा भी अद्भुत होती है... मानों छोटासा सिद्ध ही है। मुनिकी सौम्यमुद्रामें वीतरागताकी झलक दिखती है, उपशमरसमें उनका आत्मा झूल रहा है। छठे गुणस्थानके समय उनको मध्यम–अन्तरात्मा कहा, परंतु जब वे मुनि हुए तब प्रथम उनको शुद्धोपयोगमें सप्तम गुणस्थान हुआ था अतएव उत्तम–अन्तरात्मदशा हुई थी. बादमें शुभोपयोग होनेपर उनको मध्यम कहा। परन्तु शुभरागको जो मोक्षमार्ग समझता है अर्थात् रागादि विभावोंको ही निजस्वभाव मानता है, ऐसा सम्यग्दर्शनरहित जीव तो बंधमार्गमें ही है, मोक्षके मार्गको वह नहीं जानता। वह बहिरात्मा

मोक्षके मार्गसे बाहर है।

सम्यग्दृष्टिने सर्वज्ञपरमात्माको श्रद्धामे लिया है। सर्वज्ञतावाले जीव जगतमे हैं और मेरा आत्मा भी ऐसी ताकतवाला है–ऐसा धर्मी जानते हैं। परम- उत्कृष्ट पर्यायरूप परिणत आत्मा ही परमात्मा है। ऐसे परमात्मा इस समय इस भरतक्षेत्रमे नही होते, परन्तु विदेहक्षेत्रमे सीमंधरभगवान आदि लाखों जीव ऐसे परमात्मपदमें इस समय भी साक्षात् विद्यमान हैं। ऐसे सर्वज्ञपदकी पहचान यहां रहकर भी हो सकती है। सर्वज्ञपदकी जिसको श्रद्धा नहीं है वह तो बहिरात्मा है।

'जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे' ऐसा निर्णय करनेमें भी सर्वज्ञपदका स्वीकार आ जाता है। कोई सर्वज्ञकी पहचानके विना बात करे तो वह सत्य नहीं है।

अहा, जिनको आत्माका संपूर्ण ज्ञान है, सपूर्ण सुख है, और रागका संपूर्ण अभाव है–ऐसी उत्कृष्टदशावाले सर्वज्ञभगवान हैं–उनका स्वीकार सम्यग्दृष्टि ही करते हैं। बाह्यदृष्टिवाले जीवको (–रागदृष्टिवाले जीवको) परमात्माकी पहचान नहीं होती। सर्वज्ञका स्वीकार वह तो अपूर्व तत्त्वज्ञान है, वह धर्मका मूल है। सर्वज्ञता कहो या आत्माका ज्ञानस्वभाव कहो, उसकी पहचानके विना धर्मका प्रारंभ नहीं होता।

सात तत्त्वमेसे एक जीवतत्त्वकी अच्छी तरह पहचान करनेसे उसकी पर्यायके सभी प्रकार भी समझमे आ जाते है। 'सर्वज्ञ'

अर्थात् एक साथ सभीको अतीन्द्रियज्ञानसे प्रत्यक्ष जाननेवाले,—तो भी जिनको राग-द्वेष नहीं, कोई संकल्प-विकल्प नहीं, जाननेमें थकान नहीं, निराकुल आनंद ही है। अहा! ऐसा परमात्मपद...यह आत्माकी ही एक दशा है।

—शरीर रहते हुए भी सर्वज्ञपद हो सकता है क्या?

—हाँ; शरीर शरीरमें है, भगवानको उसका कुछ भी ममत्व नहीं है। जैसे शरीरका संयोग होते हुए भी शरीरसे भिन्न आत्माका अनुभव होता है, वैसे सर्वज्ञता भी हो सकती है। जगतमें ऐसे सर्वज्ञपरमात्मा हैं और मेरे आत्मामें भी ऐसा सामर्थ्य है—ऐसा सम्यग्दृष्टि अच्छी तरह (स्वानुभवपूर्वक) जानते हैं। सर्वज्ञके अस्तित्वका जिसको विश्वास नहीं उसको आत्माके ज्ञानस्वभावका ही विश्वास नहीं है।

निश्चय सम्यग्दर्शनसे धर्मी जीव निर्विकल्परूपसे शुद्ध आत्मतत्त्वमें ही 'अहं' (मैं) ऐसी प्रतीत करता है, और उस सम्यग्दर्शनके साथकी ज्ञानपर्यायमें इतनी ताकत है कि सर्वज्ञपरमात्माको भी वह अपने निर्णयमें ले लेती है। अंतरमें अपना शुद्धात्मा तो निर्णयमें लिया है, और उसकी उत्कृष्ट पर्यायरूपसे परिणत परमात्मा कैसा है-यह भी निर्णयमें आ गया है। शुद्ध द्रव्यकी जो श्रद्धा करे उसके सामर्थ्यकी तो क्या बात?-परन्तु उसके साथका ज्ञान—जो कि रागसे भिन्न हुआ है—उस ज्ञानके व्यवहारमें भी इतनी ताकत है कि परमात्माको भी वह जान लेता है; बहिरात्मा, अंतरात्मा व परमात्मा तीनोंको जान लेता है। द्रव्यरूप शुद्ध ज्ञानमय आत्मा, और

उसकी पर्यायरूप त्रिविध आत्मा, उसका स्वरूप जैसा है वैसा सम्यग्दृष्टि जानता है। समस्त लोकालोकको तीनों कालकी पर्याय सहित एक समयमे ज्ञानका ज्ञेय बनावे ऐसा महान अचिंत्य सामर्थ्य केवलज्ञानमें है; यहां पूरा ज्ञान है, तो सामने समस्त ज्ञेय एकसाथ निमित्त हैं। बस, ज्ञानमे सर्व ज्ञेय मानों स्थिर हो गये, ज्ञान ज्ञानमें स्थिर रह गया, कहीं कर्तृत्वबुद्धि या आगे–पीछे कर देनेकी वृत्ति न रही।–ऐसी दशावाले सर्वज्ञको सम्यग्दृष्टि जानते हैं–इतनी तो उसकी व्यवहारश्रद्धामें ताकत है, परमार्थश्रद्धा निर्विकल्प है उसकी ताकतका तो क्या कहना? जब ऐसी श्रद्धा करे तब ही जीवमें मोक्षका मार्ग खुलता है।

देखो, सच्ची श्रद्धा करनेके लिये जीवतत्त्वका यह वर्णन चल रहा है। निश्चयसे ज्ञायकतत्त्व एक अखंड शुद्ध है वह जीव है, व्यवहारमें उसके तीन प्रकार हैं। शास्त्रस्वाध्यायमें ऐसे तत्त्वोंका मनन करते करते, ज्ञानको एकाग्र करते करते ज्ञानमें विशेष स्पष्टता होती जाती है, अतः वीतरागमार्गमे कहे हुए तत्त्वोंका बारबार मनन करना चाहिए।

सिद्ध परमात्मा जिनको न शरीर है, न मन है, न इन्द्रियां हैं, न राग है, उन सबके न होनेपर भी केवलज्ञान है; ऐसे सिद्ध परमात्माकी पहचान करनेसे ऐसा निर्णय होता है कि शरीर–मन–इन्द्रियां या रागके आधीन आत्माका ज्ञान नहीं है। सिद्ध परमात्मा ज्ञान शरीरी हैं; ज्ञान ही आत्माका अंग है–जो आत्मासे कभी भिन्न नहीं होता। इसलिये कहा है कि—

अन्यत्र जगतमें कहीं भी आनन्द नहीं है। परमात्माका सच्चा ध्यान अपने ज्ञानस्वभावमें एकाग्रतासे ही होता है, यह बात समयसारकी ३१ वीं गाथामें दिखायी है। इसप्रकार शुद्ध जीवतत्त्वको पहिचान करके उसकी श्रद्धासे अन्तरात्मा होना और पीछे उसीके ध्यानसे परमात्मा होना—यह जीवतत्त्वकी पहचानका फल है।

इस प्रकार सात तत्त्वमेंसे जीवतत्त्वकी बात की; अब अजीवके प्रकार कहते हैं। ४-५-६।

अनंदके धाम चैतन्यका जिसको अनुभव नहीं है और रागका जिसे अनुभव है-उसे सच्चे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र कौन कहेगा? भले ही शास्त्र पढ़े, समयसारादिका श्रवण करे, भगवानके कहे हुए तत्त्वोंके भेदकी श्रद्धा करे और अहिंसादि शुभभावरूप व्रतोंका पालन करे, परन्तु चैतन्यकी निर्विकल्प शान्तिके रासवेदन रहित वह जीव श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रसे शून्य ही है, मोक्षका कारण उसे किंचित नहीं है, वह मात्र बन्धभावका ही सेवन करता है।

अजीवतत्त्वका वर्णन
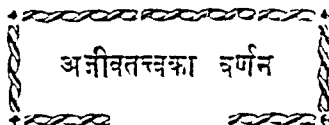
मोक्षसुखका उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है. उसमें सम्यग्दर्शनकी साथमें सात तत्त्वकी पहचान कैसी होती है यह बात चल रही है प्रथम जीवतत्त्वका तीन प्रकार दिखाकर यह कहा कि बहिरात्मपना दुःखदायक होनेसे उसको छोड़ना और शुद्धात्माके ज्ञानसे अंतरात्मा होकर पूर्ण आनन्दरूप परमात्मदशाकी प्राप्तिका उद्यम करना। इस तरह जीवतत्त्वके प्रकार दिखाकर अब अजीवतत्त्वके प्रकारोंका कथन करते हैं—

[गाथा ७ और ८ का पूर्वार्द्ध]

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं;
पुद्गल पंच वरन-रस, गंध-दो फरस वसु जाके हैं;
जिय पुद्गलको चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनुरूपी;
तिष्ठत होय अधर्म सहाई जिन बिन-मूर्ति निरूपी ॥ ७ ॥
सकल द्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो;
नियत वर्तना निशि-दिन सो, व्यवहारकाल परिमानो ।

चेतनवंत तत्त्व तो जीव है और चेतनतासे रहित तत्त्व सो अजीव है। अजीवके भेद पाच हैं—

पुद्गल—यह रूपीद्रव्य है अतएव वर्ण-गंध-रस-स्पर्शवाला है। छह द्रव्योंमें एक पुद्गल ही रूपी है—मूर्त है। हरा-पीला-लाल—

सफेद व काला यह पांच रंग, सुगंध और दुर्गंध, खट्टा-मीठा-चरपरा-कडुआ व कषायला ये पांच रस, तथा हलका, भारी लूखा-चीकना, मुलायम-कर्कश शीत-उष्ण ये आठ स्पर्श यह, सब पुद्गलकी रचना है, पुद्गलकी पर्याय है। शब्द भी अजीव पुद्गलोंकी अवस्था है, वह कुछ जीवका कार्य नहीं है। ये सब अजीव-पुद्गलके प्रकार होनेसे अचेतन है, जीवसे वे भिन्न है—ऐसा जानना।

धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्य —ऐसे दो अजीवद्रव्य सर्वज्ञदेवने देखे है, वे अति सूक्ष्म है और सारे लोकमें व्यापक है, एक जीवके प्रदेश जितने असंख्यप्रदेश उनके प्रत्येकके हैं। जीव और पुद्गल जब गति करते हैं तब उनका सहायक-निमित्त धर्मद्रव्य है, और वे गतिमान जीव-पुद्गल जब स्थिर होते हैं तब उनके सहायक-निमित्त अधर्मद्रव्य है, ये दोनों द्रव्य अरूपी और अचेतन हैं।

आकाशद्रव्य – ऊपर जो बादल दिखता है वह तो पुद्गलकी रचना है, वह आकाशद्रव्य नहीं है। आकाशद्रव्य तो अरूपी है, वह सर्वव्यापी है, ऊपर नीचे चारों तरफ सर्वत्र आकाश है। आकाश अर्थात् क्षेत्र-जगह। जीव-अजीव सभी द्रव्योंका आकाशमें रहना है। आकाश इतना बड़ा (अनंत) है कि उसके एक कोनेमें (अन्दर) मात्र लोक सब जीव-अजीव तत्त्व रहे हुए है। अनंत आकाशका कहीं पार नहीं, तो भी ज्ञान तो उसका भी पूर्णतया

जान लेता है.. ज्ञानका तो कोई अचिंत्य महान सामर्थ्य है। धर्मी-जीव ऐसे आकाशद्रव्यको और उसको जाननेवाले ज्ञानकी श्रद्धा करते हैं।

कालद्रव्य—वह भी अजीव है, उसमें समय समयकी वर्तना-रूप जो अरूपी कालअणु है सो निश्चयकाल है, वे असंख्यात हैं; और घटिका-मुहूर्त-दिन-मास-वर्ष-सागरोपम आदि जो प्रमाण हैं सो व्यवहारकाल है। पदार्थके परिणमन स्वभावमें वह निमित्त है। यह कालद्रव्य भी अरूपी एवं अजीव है।

ऐसे अजीवतत्त्वके पांच प्रकार कहे. धर्मी जीव ऐसे तत्त्वकी श्रद्धा करते हैं।

एक जीव और पांच अजीव, ऐसे छह जातिके द्रव्य हैं।
उनमें एक चेतन, और पांच अचेतन.
एक मूर्त-रूपी, और पांच अमूर्त-अरूपी
एक सर्वव्यापी, और पांच असर्व व्यापी

चेतनावाला जीव और चेतनारहित अजीव-ऐसी संक्षिप्त व्याख्या करके जीव-अजीवकी भिन्नता समझायी है।

प्रश्न.—अजीवतत्त्व चेतनासे रहित है, अतः उसमें ज्ञान नहीं है यह ठीक है. किन्तु वह जाननेमें जीवका सहायक तो है न?

उत्तर—ना जीवका ज्ञानस्वभाव दूसरोंकी (इन्द्रियादिकी) सहायसे रहित है। इन्द्रियादिका निमित्त तो पराधीन ऐसे इन्द्रिय-ज्ञानमें है, और उसमें भी ज्ञान तो स्वयं जीवसे अपनेसे होता

है, कहीं इन्द्रियोंसे नहीं होता। केवलज्ञान होनेमें तो इन्द्रियादिका निमित्त भी नहीं है। ज्ञानका आधार आत्मा है, ज्ञानका आधार जड़ इन्द्रियाँ नहीं है।

केवलज्ञानमें ज्ञेयरूपसे सारा विश्व निमित्त है, परन्तु उसमेंसे कुछ ज्ञान नहीं आता। आत्माका ज्ञान कोई अचेतन वस्तुमें नहीं है, एवं कोई अचेतन वस्तु ज्ञानमें नहीं है, इसप्रकार ज्ञानको परसे अत्यन्त भिन्न जानना। सात तत्त्वोंका ज्ञान करनेसे जड़-चेतनकी ऐसी भिन्नताका ज्ञान भी हो जाता है।

अहा, मेरा ज्ञान मेरेमें ही है, कहीं अजीवमें मेरा ज्ञान नहीं। मेरा ज्ञान अजीवके पासमेंसे नहीं आता। ऐसा समझकर ज्ञानको अपने आत्माकी सन्मुख करनेसे अपूर्व आनन्दका अनुभव होता है।

यहाँ धर्म-अधर्म आदि सूक्ष्म द्रव्योंकी पहचान गति-स्थिति आदिमें उनका निमित्तपना दिखा करके कराई। धर्मास्तिकाय स्वयं स्थिर द्रव्य है, वह तो किसी पदार्थको गति नहीं कराता, परन्तु स्वयं गतिमान द्रव्योंको वह निमित्त है। वैसे जगतके कार्योंमें जो कोई निमित्त कहा जाय वे सब निमित्त भी धर्मास्तिकायवत् अकर्ता ही है। एक पदार्थ अपने ही स्वभावसे स्वकार्यरूप परिणमन करे और उस समय अन्य पदार्थ निमित्तरूप हो, उससे कहीं किसीकी पराधीनता नहीं हो जाती। जैसे केवलज्ञानके सामने ज्ञेयरूपसे जगत निमित्त है, तो क्या इससे केवलज्ञान ज्ञेयोंके आधीन हो गया?—ना, वह तो स्वाधीन है, वैसे सभी पदार्थोंका परिणमन

स्वाधीन है। चल करके थकित हुए मनुष्यको कहीं वृक्ष ऐसा नहीं कहता कि तू यहां ठहर! पानी कहीं मछलीको ऐसा नहीं कहता कि तू चल! पदार्थ कहीं ज्ञानको ऐसा नहीं कहता कि तू मेरेको जान! पदार्थ स्वाधीनतासे ही अपनी अपनी गति-स्थिति या ज्ञानादि परिणतिरूप हो रहे हैं। अज्ञानमेंसे ज्ञानरूप परिणमन करनेवाले शिष्यके लिये ज्ञानी गुरु निमित्त है, परन्तु वे गुरु कुछ उसकी ज्ञानपरिणतिका कर्ता नहीं है। अहा! सर्वज्ञ मार्गका वीतरागविज्ञान अलौकिक है, पदार्थका स्वाधीन स्वरूप वह दिखाता है ऐसे स्वाधीन तत्वका उपदेश वही इष्ट उपदेश है; ऐसे ही उपदेशसे भेदज्ञान व वीतरागता होकर जीवका हित होता है।

किसी वस्तुका स्वयंका स्वरूप क्या है—उसको लक्षमें लेकर समझनेका प्रारम्भ करना चाहिए क्योंकि स्वके ज्ञानपूर्वक परका सच्चा ज्ञान होता है। जैसे कि—जगतमें धर्मास्ति-अधर्मास्ति दोनों एकसाथ सर्वत्र विद्यमान हैं, उनमेंसे किसको निमित्त कहना उसका निर्णय तो पदार्थके ही कार्यके अनुसार होगा। पदार्थ गमनक्रिया करे तब धर्मास्तिको निमित्त कहा, अधर्मास्तिको न कहा। इसप्रकार जिस पदार्थमें कार्य हो रहा है उस पदार्थके धर्मको देखना चाहिए, संयोगकी ओरसे नहीं देखना चाहिए। वस्तुस्वभावके ज्ञानसहित संयोगका ज्ञान करना भी सत्य है। भगवानने सभी द्रव्योंके धर्म स्वाधीन अपने-अपनेमें ही देखे हैं उसीप्रकार उनका स्वरूप पहचानकर सच्ची तत्त्वश्रद्धा करना चाहिए।

तत्त्वश्रद्धाके लिये जीव-अजीवकी अत्यंत भिन्नताका ज्ञान

[illegible]
है। ऐसा बोलना है तो [illegible], यह गाड़ी
है। उसे कुछ मालूम नहीं है कि मैं चलती हूँ या मैं रेलगाड़ी हूँ।
उसको जाननेवाला तो जीव है। जब भारतमें पहले पहल गाड़ी
(ट्रेन) दौड़ना प्रारम्भ हुई तब उसे दौड़ता देखकर कितने ही
ग्राम्य लोग उसे जीव अथवा राक्षस मानते थे, कोई उसे
नारियल चढ़ाकर पूजते थे, देखो, कैसी भ्रमणा? धर्मके नामपर
अज्ञानी लोग भी ऐसी ही भ्रमणा करते हैं कि शरीरका चलना-
फिरना-बोलना ये सब कार्य जीवके हैं, जीव ही शरीरको चलाता
है।–परन्तु यदि जीव-अजीवके भिन्न भिन्न लक्षणको अच्छी तरह
पहचाने तो ये सब भ्रमणायें दूर हो जाय और सच्चा तत्त्वज्ञान
प्रगट हो।

अंतरात्मा-सम्यग्दृष्टि सर्वज्ञदेवके कहे हुए अतीन्द्रिय तत्त्वोंकी
श्रद्धा करता है, उनसे विपरीत श्रद्धा उसके नहीं होती। जगतमें
एक अद्वैत ब्रह्म ही है और उससे भिन्न अजीवादि अन्य कुछ भी
सत नहीं है, अथवा कोई ईश्वर इस जगतका कर्ता-हर्ता है,–इस

प्रकारकी विपरीत मान्यता सम्यग्दृष्टिके व्यवहारमें भी नहीं होती, व्यवहारमें भी सर्वज्ञमार्गके तत्त्वोंकी ही श्रद्धा होती है। उसका यह वर्णन चल रहा है, उसमे जीवके तीन प्रकार और अजीवके पांच प्रकारका वर्णन किया। जीव और अजीवके बाद तीसरा आस्रवतत्त्व है तथा चौथा बन्धतत्त्व है–इसका कथन अब आगेके श्लोकमे करेंगे।

❋ उत्तम शील ❋

रागसे भिन्न ज्ञानका स्वाद जिसे अनुभवमे नहीं आता, उसे मोक्षके हेतुरूप धर्मकी खबर नहीं है रागका वेदन तो दुःखरूप है, और उसका फल तो बाह्य सामग्री है, इसलिये जो शुभरागकी इच्छा करते हैं,—उसे अच्छा मानते हैं, वे जीव संसार–भोगकी ही इच्छा करते हैं। मोक्ष तो ज्ञानमय है, उसकी आराधना ज्ञान द्वारा होती है ऐसे ज्ञानका वेदन करना उसीका नाम उत्तम शील है, और वह शील मोक्षका कारण है। ऐसा शील आत्माको महान आनन्ददायक है उसमे परसंग नहीं है, आत्मा अपने एकत्वमे सुशोभित होता है।

आस्रव तथा बन्ध तत्त्वका वर्णन

परद्रव्यसे भिन्न अपने शुद्ध आत्माकी रुचि-अनुभूतिके द्वारा जिसने सम्यग्दर्शन किया है वह जीव सर्वज्ञभगवानके कहे हुए जीवादि सात तत्त्वोंकी भी कैसी श्रद्धा करता है उसका यह वर्णन है। श्लोक ४-५-६ मे जीव तत्त्वके तीन प्रकार (बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा) का कथन किया, श्लोक ७ मे तथा ८ के पूर्वार्धमे अजीव तत्त्वके पाच भेद (पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश तथा काल) का कथन किया। अब आठवे श्लोकके उत्तरार्धमें तथा नवमें श्लोकके पूर्वार्धमे आस्रव और बंध तत्त्वका स्वरूप दिखाकर उनका त्याग करनेका कहते हैं—

श्लोक ८ (उत्तरार्ध) तथा ९ (पूर्वार्ध)

यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन वच-काय त्रियोगा,
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा ॥ ८ ॥
ये ही आतमको दुःख-कारण, तातैं इनको तजिये;
जीवप्रदेश बंधै विधि सो सो, बंधन कबहुं न सजिये ।

जीव और अजीव तत्त्वका वर्णन किया, अब आस्रव तथा बन्ध तत्त्वका वर्णन करते हैं उसे सुनो। मन-वचन-कायके योग तथा मिथ्यात्व-अव्रत-प्रमाद और कषाय सहित मलिन उपयोग ये कर्मके आनेके कारण हैं वे आस्रवभाव आत्माको दुःखके

कारण हैं अतः वे त्याग करने योग्य हैं। पाप हो या पुण्य, उन दोनोंको आस्रवमें ही गिनकर छोड़ने योग्य कहे हैं। पाप आस्रव छोड़ने योग्य और पुण्य आस्रव आदरने योग्य—ऐसा नहीं कहा। इसीप्रकार बंध तत्त्वमें भी पापबंध और पुण्यबंध दोनोंको समझ लेना। मिथ्यात्वादि भावोंके कारण आत्मप्रदेशोंमे कर्मोंका बन्धन होता है यह बन्धतत्त्व है, वह जीवको दुःखका कारण है, अतः वे मिथ्यात्वादि बन्धभाव कभी करने योग्य नहीं है।

भाई, तुम्हे दुःखका कारण तुम्हारा मिथ्यात्व तथा क्रोधादि भाव ही है, अतः आस्रव–बन्धके कारणरूप उन भावोंको छोड़ना चाहिए। जिस किसी भावसे जीवको किंचित् भी आस्रव या बन्ध हो वह भाव अच्छा नहीं, हितरूप नहीं, करने जैसा नहीं किन्तु छोड़ने जैसा है—ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव जानते हैं। जो इससे विपरीत माने उसको आस्रव–बन्धतत्त्वकी श्रद्धामे भूल है।

हे भाई! तुम्हारे हितके लिये प्रयोजनभूत तत्त्वोंको तो तुम पहचानो। जीव और अजीव दोनों तत्त्व भिन्न, इनमें जिसके जो गुण–पर्याय हो उसीके वे समझने चाहिए, एकका दूसरेमें मिलान नहीं करना चाहिए। एवं जीवके ज्ञानादि स्वभावभाव तथा रागादि विभावभाव इनको भी भिन्न भिन्न पहचानकर तत्त्वोंकी सच्ची श्रद्धा करना चाहिए।

प्रश्न—क्या सम्यग्दृष्टि मेढ़क आदि तिर्यंचको भी यह सब ज्ञान होता है?

उत्तर—हाँ, शब्द भले उन्हें न आते हो, किन्तु उनके

ज्ञानमें मानों तत्त्वोंका भावभासन आ जाता है। सम्यग्दृष्टि मेंढक-सर्प-सिंह-हाथी वगैरह भी ऐसी ही श्रद्धा करते हैं, विपरीत मान्यता उन्हें नहीं होती, सम्यग्दृष्टि मेंढक आदिकी भी तत्त्वोंकी प्रतीत गणधरदेव जैसी ही है। अंतरके भासमें उन्हें आत्माका आनन्द अच्छा लगता है और रागादि आस्रव उन्हें नहीं लगते। शुभरागका वेदन हो तब वे ऐसा नहीं मानते कि यह मुझे आनन्दका वेदन है। शुभरागके वेदनमें भी उन्हें दुःख लगता है, अतः आस्रव दुःखदायक है-हेय है ऐसी श्रद्धा उनके भासमें आ गई। और आनन्द अर्थात संवर-निर्जराका भाव उपादेय है ऐसी श्रद्धा भी आ गई। अंतरमें आत्मा आनन्दस्वरूप है-ऐसा जो वेदन होता है उसे ही वे 'आत्मा' समझते हैं, और इससे विरुद्धभाव सो आत्मा नहीं है-यह बात भी उसमें आ ही जाती है। जो शुभ या अशुभ-राग वृत्तियाँ उठें वे उन्हें दुःखरूप लगती है अतः वे उन्हें छोड़नेका अभिप्राय रखते हैं, अर्थात आस्रव तथा बन्धको हेय समझते हैं, और आनन्दके वेदनरूप संवर-निर्जराकी वृद्धि चाहते हैं, अर्थात संवर-निर्जरा मोक्षको उपादेय समझते है। इस तरह उनके वेदनके भावमें सातों तत्त्वकी अविपरीत श्रद्धा समा जाती है। वे सम्यग्दृष्टि-मेंढक भी ऐसा नहीं मानते कि शरीर है सो मैं हूं, अथवा ईश्वरने मेरेको बनाया, अथवा रागादिभाव सुखरूप है। वे तो शरीरसे भिन्न, रागसे भिन्न, शाश्वत ज्ञानस्वरूप ही अपनेको अनुभवमें लेते हैं और ऐसी ही श्रद्धा करते हैं।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव अपने हितके लिये प्रयोजनभूत

तत्त्वको अच्छी तरह पहचानते हैं। जीव और अजीव स्वयंसिद्ध मूलवस्तु इनकी भिन्नता तथा जीवके सुख-दुःखके कारणरूप पर्याय, इनका जानना प्रयोजनरूप है, और सात तत्त्वमें ये सब आ जाते हैं। घट है सो अजीवकी पर्याय है और वह मेरा कार्य नहीं है—ऐसा धर्मी जानते हैं, किन्तु वह घट कहाँ बना? कब बना? इसके लिये मिट्टी कहाँसे आई? इसके बननेमें कौन कुम्हार निमित्त था?—ये सब जानना अप्रयोजनरूप है, इनके साथ जीवके हित-अहितका सम्बन्ध नहीं है। इनको जाननेसे जीवका हित नहीं हो जाता, और इनको न जाननेसे जीवका हित अटक नहीं जाता। परन्तु चेतन लक्षणरूप जीव क्या है? उसकी अन्तरात्मा आदि दशायें कैसी हैं? इनका ज्ञान (शब्दज्ञान नहीं किन्तु भावभासनरूप ज्ञान) धर्मीको अवश्य होता है। मैं चेतन हूं, मेरे चेतनका कोई अंश अजीवमें नहीं है, और अजीवका कोई अंश चेतनमें नहीं है। चेतनके सभी गुण चेतनमें हैं, जड़के सभी गुण जड़में हैं, दोनोंकी अत्यन्त भिन्नता है। जीव-अजीवके गुण भिन्न, जीव-अजीवकी पर्याय भिन्न ऐसे प्रत्येक द्रव्य अपने अपने गुण-पर्यायको धारण है, किसीका अंश दूसरेमें मिलता नहीं। इन्हें सर्वज्ञके मार्ग अनुसार अच्छी तरह पहचानना चाहिए।

चेतना लक्षणरूप जीव इसकी पर्यायके तीन प्रकार : बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा, इनमेंसे—

बहिरात्मामें आस्रव तथा बन्ध तत्त्व आ गये।
अंतरात्मा संवर तथा निर्जरा तत्त्व आये।

इतना बड़ा अनन्त सर्वव्यापी आकाश, इस आकाशको भी जो अपने अनन्तवें भागकी शक्तिसे जान ले ऐसा महान ज्ञानसामर्थ्य, उसका धारक यह जीव स्वयं है। अनन्त आकाशका ख्याल करने पर अपने ऐसे महान ज्ञानसामर्थ्यका भी निर्णय हो जाता है। ऐसे बड़े आकाशकी, और इससे भी महान ज्ञानसामर्थ्यकी बात सर्वज्ञदेवके जैनशासनके बिना अन्यत्र कहीं भी नहीं हो सकती। और सर्वज्ञके भक्त सम्यग्दृष्टिके बिना ऐसे तत्त्वका सच्चा निर्णय दूसरा कोई नहीं कर सकता।

अहो, आत्माके हितके लिये जैनधर्मके ऐसे तत्त्वका अभ्यास करना चाहिए। विद्यार्थी लोग भी छुट्टियोंमें खेल कूदके बदलेमें ऐसे वीतरागीतत्त्वका अभ्यास करें ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे उनका जीवन सुखी हो। हमारे भगवानके देखे हुए तथा कहे हुए छह द्रव्य कौन हैं तथा उनके प्रत्येकके मुख्य लक्षण (विशेष गुण) क्या है ? किस भावसे जीव सुखी है और किस भावसे वह दुःखी होता है ? यह पहचानना चाहिए।

आप आपको जाने और सभी पदार्थोंको भी जाने-ऐसी शक्ति जीवमें ही है, अन्य किसीमें नहीं।

आप आपमें रहे और सभी पदार्थोंके भी रहनेमें निमित्त हो-ऐसी ताकत (ऐसा स्वभाव) आकाशद्रव्यमें ही है, अन्य किसीमें नहीं। (पदार्थ रहते तो है स्वक्षेत्रमें, आकाश उन्हें निमित्त है।)

आप स्वयं परिणमे और सभी पदार्थोंके भी परिणमनमें निमित्त हो ऐसा स्वभाव कालद्रव्यमें ही है, अन्य किसीमें नहीं।

जगतके पदार्थ स्वयं सत् हैं, सर्वज्ञने उन्हें सत् जाना है और वाणीसे भी ऐसा कहा है, इसप्रकार सत् वस्तु, उसका ज्ञान और उसका कथन इन तीनोंका मेल है, उसकी पहचानसे सच्ची श्रद्धा होती है। जीवको सर्वज्ञका सच्चा स्वरूप तब ही समझमें आता है जब कि वह उनके जैसे अपने आत्माकी स्वसन्मुख होकर निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट करे। ज्ञानस्वभावी आत्माके अनुभवके बिना कोई ऐसा कहे कि मैंने सर्वज्ञको पहचान लिया, तो वह यथार्थ नहीं है, क्योंकि आत्माकी पहचानपूर्वक ही सर्वज्ञकी पहचान होती है। ज्ञानकी शक्ति इतनी महान है कि तीन कालकी पर्यायों सहित समस्त पदार्थोंको एकसाथ ज्ञानका निमित्त बनाती है, कोई ज्ञेय बाकी नहीं रहता। यदि ज्ञेय बाकी रह जाय तो ज्ञान अपूर्ण रह जाय, तब उसे सर्वज्ञ कौन कहे?

संवर तथा निर्जरातत्त्वका वर्णन

शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये ।
तप-बल तैं विधिझरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये ॥ ९ ॥

शुद्ध उपयोग तथा वीतरागतारूपी आत्माका जो जहाज, उसमें मिथ्यात्व-रागादि छिद्रोंके द्वारा कर्मरूपी जलका आना सो आस्रव है; सम्यग्दर्शनपूर्वक शुद्धता तथा वीतरागता होने पर वे छिद्र बन्द हो जाते हैं और कर्मका आना रुक जाता है सो संवर है, और जैसे नौकामें एकत्र हुए पहलेके पानीको बाहर निकाल देते हैं वैसे तप द्वारा विशेष शुद्धि होने पर आत्मामेंसे कर्मोंका झड़ जाना निर्जरा है। ऐसी संवर-निर्जरा जीवको सुखका कारण है अतः उनका सदा आचरण करना चाहिए।

उसे पहचाना भी नहीं है। निर्जरामें कष्ट नहीं, निर्जरामें तो महा आनंद है।

प्रश्न—अकेला शुद्ध आत्मतत्त्व ही माने और ये सब न माने तो?

उत्तर—भाई, शुद्ध आत्माको जो सच्चे रूपसे जाने उसके ज्ञानमें ये सभी तत्त्वोंका भी स्वीकार आ ही जाता है। शुद्ध आत्मा मैं हूँ—ऐसा जब जाना तब, उसके विपरीत ऐसे रागादि अशुद्धभाव मैं नहीं—ऐसा भी जाना, अतः उन रागादिको (आस्रव-बंधको) हेय जाना ('आस्रव' इत्यादि शब्द भले न आते हों किन्तु उसके निषेधका भाव तो ज्ञानमें वर्तता ही है।) और शुद्ध आत्माको पहचानकर उसके अनुभवसे जो आनन्द आया उसे वह अच्छा—उपादेय समझता है, और वह तो संवर-निर्जरा है, अतः संवर-निर्जरा-मोक्षका ज्ञान भी उसमें आ गया नाम भले न आते हों।

भी ज्ञात परिणामवाला जीव दुःखी नहीं होगा। जिसके जितने अंश जितना मिथ्यात्वादि रागभाव है उतना ही उसको दुःख है, और सम्यक्त्वादि निराकुलभाव ही सुख है। आत्माका आनन्द स्वभाव है उसे पहिचानकर अनुभव करे तभी जीवको सच्चा सुख आनन्द होता है, वैसे ही आस्रव-बंध टलते हैं और संवर-निर्जरा होते हैं। कर्मके आनेके कारणरूप मिथ्यात्वादि भावोंको जबतक जीव नहीं छोडता, उनके किसी भी अंशको (शुभरागको भी) भला जानता है, तबतक जीवको सच्चा संवर-निर्जरा नहीं होता, धर्म नहीं होता, मोक्षमार्ग नहीं होता।

धन आवे या जावे, उसके कारण जीवको सुख-दुःख नहीं है।

पुत्र जन्मे या मरे, उसके कारण जीवको सुख-दुःख नहीं है।

देह निरोग हो या रोगी, उसके कारण जीवको सुख-दुःख नहीं है।

अरे जीव! तेरा आनन्दस्वभाव है उसका भान करनेसे तू सुखी हो, और उसको भूलनेसे तू दुःखी हो। अरे भाई, तू दुःखी तेरी भूलसे, और दोष निकालेगा दूसरेका, तो तेरा दुःख और तेरी भूल कहांसे मिटेगी? तेरी भूल, और भूलरहित स्वभाव, इन दोनोंका स्वीकार करनेपर ही स्वभावके आश्रयसे भूल मिटकर निर्दोषता होगी, अतः सुख होगा।

अज्ञानीको अनादिसे देहबुद्धिका एवं पराश्रयका ऐसा रंग चढ़ गया है कि अपने सम्यक्त्वादि गुणके लिये भी वह परका आश्रय मानता है, और अपने दोष भी दूसरेके ऊपर डालनेकी उसे आदत

है। हे भाई! कोई परवस्तु तेरे गुण-दोषका या सुख-दुःखका कारण नहीं है। तेरे परिणाममें तेरे स्वभावकी अनुकूलता ही सुख, और ज्ञानस्वभावसे प्रतिकूलता ही दुःख देहकी अनुकूलता या प्रतिकूलतामें तेरा कोई सुख-दुःख नहीं है। पुत्रहीन होना, विधवा होना, क्षयरोग होना, छेदन-भेदन होना, घर गिरना, इनमें कहीं जीवका दुःख नहीं है, वे तो भिन्नवस्तु है। भिन्नवस्तुका तेरेमें अस्तित्व ही नहीं है तब वे तुझे दुःख-सुख कैसे देगी? आप अपने स्वभावको भूलकर, संयोगके सामने देखकर जो मोह-राग-द्वेष करता है उसीका जीवको दुःख है। और अपना आनन्दस्वभाव है उसकी सन्मुख देखनेसे सुख होता है। इसप्रकार जीवके सुख-दुःखके कारन जीवमें ही है, दूसरेमें नहीं। इनको पहचानकर, उनमेंसे दुःखके कारणरूप आस्रव-बन्धको छोड़ना, और सुखके कारणरूप संवर-निर्जराको प्रगट करना।

प्रतिकूल संयोग हो और दुःख हो तो भी उस दुःखका अस्तित्व जीवमें है, संयोगमें नहीं है। जीव अपने आनंदस्वभावको भूलकर और परवस्तुमें सुखकी कल्पना कर उसके गाढ़ प्रेममें रुक गया है। और जब तक परसे सुख माने तब तक उसका उपयोग परमेंसे छूटता नहीं और स्वमें आता नहीं, अतः उसे संवर-निर्जरा नहीं होता, आस्रव-बंध ही होता है।

यहाँ कहते हैं कि जीवको किसी प्रकारका भी आस्रव और बंध हो उसे भला नहीं मानना, बंधके कारणरूप मिथ्यात्वका या शुभ-अशुभ भावोंका सेवन न करना, परन्तु मोक्षके कारणरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभावका निरंतर सेवन करना; उसका सेवन ही भावसंवर और भावनिर्जरा है। अशुभको छोड़ना और शुभरागको आदरना—ऐसा अज्ञानी मानते हैं, ज्ञानी तो अशुभ और शुभ दोनोंसे भिन्न ऐसा शुद्धभावको ही आदरते हैं शुभ-अशुभ दोनोंको ज्ञानसे भिन्न जानकर छोड़ देते हैं।

देखो, सात तत्त्वके निर्णयमें यह सब समा जाता है।

अनुभव करना वही 'इन्द्रियजय' (जितेन्द्रियपना) है। ऐसे शम और इन्द्रियदमन भेदज्ञानसहितके शुभभावमें होते हैं, और उनसे ही संवर-निर्जरा होता है। इन्द्रियोंको जो अपनी माने, इन्द्रियोंको जो ज्ञानका साधन माने वह उनका अवलंबन क्यों छोड़े? वह तो अपना ज्ञान इन्द्रियोंमें ही लगावे, अतः उसे इन्द्रियदमन नहीं हो सकता। शम-दम-तप या संवर-निर्जरा तो स्वद्रव्यके ही अवलंबनसे होते हैं, परके अवलंबनसे नहीं होते। अरे, स्वद्रव्यको छोड़कर धर्म कैसे हो सकता है? परसन्मुख रहकर निमित्तको बदला इससे क्या? अथवा रागका प्रकार ((तीव्र-मंद) बदला इससे क्या? जब स्वसन्मुख होकर रागरहित शुद्ध परिणति करेगा तभी जीवको धर्म और संवर-निर्जरा होगा।

भगवान आदिनाथने या भगवान महावीरने मुनिदशामें जो तप किया उसमें तो चैतन्यकी उग्र शुद्धताका प्रतपन था, बाह्य दृष्टिवाले जीवोंने उस शुद्धताको तो न देखी, और बाह्यमें अन्न-पानीका संयोग न हुआ उसे ही तप मान लिया,—परन्तु तपका स्वरूप ऐसा नहीं है। तप तो चैतन्यकी दशा है, वह शरीरमें नहीं रहता। यदि संवर-निर्जराका सच्चा स्वरूप पहिचाने तो ऐसे तपके सच्चे स्वरूपकी पहचान हो। इसलिये सम्यग्दृष्टिको सात-तत्त्वकी पहचान कैसी होती है उसका यह वर्णन चल रहा है। उसमें छह तत्त्वोंका कथन हुआ, अब आगे सातवाँ मोक्षतत्त्व कहते हैं।

मोक्षतत्त्वका वर्णन; तथा सम्यक्त्वके निमित्तरूप देव-गुरु-धर्मका वर्णन

जीवादि सात तत्त्वोंको पहचानकर अपनी श्रद्धा निर्दोष करनेके लिये यह कथन चलता है। इसमें छह तत्त्वकी बात की, अब सातवाँ मोक्षतत्त्व कैसा है यह कहते हैं, तथा सम्यग्दर्शनमें निमित्तकारनरूप देव-गुरु-धर्म कैसे होते हैं यह भी दिखाते हैं—

सकल कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी;
इहि विध जो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित व्यवहारी।
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह विन, धर्म दयाजुत सारो;
ये हु मान समकितको कारण, अष्ट-अंग-जुत धारो ॥ १० ॥

साधनेवाले निष्परिग्रही गुरु, और सारभूत दयामय धर्म,—ऐसे देव-गुरु-धर्मको ही सम्यग्दर्शनका निमित्तकारन समझना। इनसे विपरीतको सम्यग्दृष्टि कभी नहीं मानता।

—ऐसे सात तत्त्वोंको तथा सच्चे देव-गुरु-धर्मको पहचानकर हे जीवों! तुम निःशंकतादि अष्ट अंग सहित उसे धारण करो। उन निःशंकतादि आठ गुणोंका कथन गाथा १२ तथा १३ में करेंगे।

जीव त्रिकाल है, और मोक्ष उसकी एक पूर्ण शुद्ध पर्याय है।

जो टिके सो गुण।
पलटे वह पर्याय।
अनंत गुण-पर्यायसहित द्रव्य।

द्रव्य-गुण सदैव होते हैं, मोक्षपर्याय नई होती है।

—सम्यग्दृष्टिके अभिप्रायमें इन सबका स्वीकार आ जाता है।

अरिहंत व सिद्ध परमात्मा सो देव है, आचार्य-उपाध्याय-साधु सो निर्ग्रन्थ गुरु हैं, और दयामय ऐसा सारभूत धर्म है। यहाँ व्यवहार सम्यक्त्वका वर्णन है अतः दयामय धर्मकी बात की है, सारभूत दया अर्थात् सच्ची दया जैनधर्ममें ही होती है, अन्यमें नहीं होती, क्योंकि, आलू वगैरहमें अनंत जीव हैं, अण्डे वगैरहमें पंचेन्द्रिय जीव हैं,—ऐसे जीवका अस्तित्व ही जो न जाने उसको सच्ची दया कहांसे हो? जो दयाकी बात तो करे परन्तु फिर कंदमूल आदिका भक्षण करनेका कहे, रात्रिको भी खानेका कहे, उसके मतमें जीवदया कहां रही? अतः जीवदयाका सच्चा स्वरूप

जैनधर्ममें ही है। तदुपरांत, निश्चयसे जितनी रागकी उत्पत्ति है उतनी जीवके चैतन्यभावकी हिंसा है, और राग न होना वह अहिंसा है,—हिंसा-अहिंसाका ऐसा सूक्ष्मस्वरूप भगवान अरिहंतदेवके शासनके बिना अन्यत्र कहीं भी नहीं है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि देव-गुरु-धर्मका स्वरूप पहचानते हैं और विपरीतको नहीं मानते।

ऐसे वीतरागी देव-गुरु-धर्म ही सम्यक्त्वमें निमित्त होते हैं। जैनगुरु अर्थात् जैनसाधु सदा निर्ग्रंथ ही होते हैं, उन्हें बाह्यमें वस्त्रादि परिग्रहकी बुद्धि नहीं होती और अंतरमें मिथ्यात्वादि भाव नहीं होते। जो इससे विपरीत स्वरूप माने उसे तो व्यवहारमें भी भूल है, सम्यग्दर्शनके सच्चे निमित्तका भी उसे ज्ञान नहीं है।

संसारके लोग देहको ही आत्मा समझकर जितनी भी विद्या पढ़ते हैं वह सब कुज्ञान है. इसमें आत्माका हित कुछ भी नहीं है। यह देह तो जड़ है, वह आत्मा नहीं है। आत्मा नित्य रहता है और शरीर तो भिन्न होकर राख हो जाता है, यदि वह आत्माका होता तो आत्मासे कभी अलग नहीं होता, जैसे ज्ञान आत्माका है तो वह आत्मासे कभी भिन्न नहीं होता, शरीर अलग होता है अतः वह आत्मासे सदैव भिन्न ही है। एवं कर्म भी शरीरकी ही जातिका है, वे आत्माकी जात नहीं हैं, आत्मासे भिन्न हैं।

अहो, जिनभगवानके दर्शाये हुए वीतरागविज्ञानसे ही जड़-चेतनका ऐसा पृथक्करण होता है।

बाह्यसंयोग जीवको सुखरूप नहीं, दुःखरूप भी नहीं।
रागादि आस्रव दुःखरूप ही है, इनमें जरा भी सुख नहीं।
आत्माका सम्यग्दर्शनादि सुखरूप है, इसमें दुःख नहीं है।
आस्रवों दुःखके कारण हैं—तातैं इनको तजिये।
संवर-निर्जरा सुखके कारण है—तातैं इनको भजिये।

अरे, अपने सुख-दुःखका कारन कौन है इसका भी अज्ञानी जीवको पता नहीं है। सच्चिदानंदस्वरूप आत्माकी पहचान करके (श्रद्धा-ज्ञान करके), इनसे विपरीत ऐसे पुण्य-पाप-आस्रव-बंधरूप अशुद्ध भावोंको दुःखके कारण जानकर छोड़ देना चाहिए, और शुद्ध आत्माके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप संवरको सुखरूप समझकर अंगीकार करना चाहिए।

भगवान आत्मा आनंदस्वरूप है, आनंद बाहरमें नहीं है. उसके आनंदके वेदनमें बाह्यवस्तु निमित्त भी नहीं है, वह तो विषयातीत है, आत्मामेंसे ही [illegible] है। मोक्षरूप ऐसा महा आनन्द जीवका ही स्वभाव है। ऐसे आनन्दरूप जो मोक्षदशा है वह सम्यक्त्वादि आठ महा गुणोंसे युक्त है, और मोहादि आठ कर्मोंका उसमें अभाव है। ऐसी मोक्षदशा-सिद्धदशा-परमपद सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रसे ही होती है, अन्य कोई साधनसे नहीं होती। वह मोक्षदशा अविनाशी स्थिर सुखरूप है, प्रगट होनेके बाद वह [illegible] नहीं हो सकता है। साधकभावरूप मोक्षमार्गका काल तो मर्यादित है (असंख्य समय ही है) किन्तु उसके साध्यरूप मोक्षदशा

करना। सम्यग्दर्शनके लिये कौनसे भाव दोषरूप हैं उन्हें पहचाने तो उनका त्याग करे; और सम्यग्दर्शनके लिये कौनसे भाव गुणरूप हैं उन्हें पहचाने तो उनका ग्रहण करे। जब दोषको पहचाने ही नहीं तब उन्हें कैसे छोड़े? और गुणको पहचाने ही नहीं तब उनका ग्रहण कैसे करे? अतः गुणका ग्रहण व दोषका त्याग करनेके लिये इन दोनोंका स्वरूप पहचानना चाहिए। दोषको दोषरूपसे जानना वह तो दोषका कारण नहीं है, यदि दोषको जानते हुए उसीमें रुक जाय और गुणस्वभावका ग्रहण न करे तो उसे गुण प्रगट नहीं होते और दोष नहीं टलते। परन्तु दोष और गुण दोनोंको जानकर जहाँ गुणस्वभावकी ओर झुका वहाँ दोष नहीं रहते। जो गुण और दोष दोनोंका सच्चा स्वरूप पहचाने वह अवश्य गुणकी ओर उन्मुख होगा और दोषोंसे विमुख होगा। इस प्रकार गुण-दोषको जानकर गुणका ग्रहण करनेके लिये व दोषका त्याग करनेके लिये अब संक्षेपसे उनका स्वरूप कहते हैं।

तदुपरांत प्रशम-संवेग-आस्तिक्य और अनुकम्पामें भी सम्यग्दृष्टि अपने चित्तको लगाता है अर्थात् सम्यग्दृष्टिके परिणाममें उस प्रकारकी विशुद्धि रहती है। अनन्तानुबन्धी कषाय तो उसके सर्वथा छूट गये हैं और अन्य कषायों भी मंद हो गये हैं, अतः उसके प्रशांतभाव, संसारसे विरक्तभाव और मोक्षमार्गके प्रति उत्साह, सर्वज्ञदेव और उनके कहे हुए तत्त्वोंके प्रति दृढ विश्वासरूप आस्तिक्यता, तथा संसारके दुःखी जीवों (आप स्वयं एवं दूसरे) दुःखोंसे छूटकर मोक्षसुख पावे ऐसे विचाररूप अनुकम्पा,

—ऐसा परिणाम सहज ही होता है, अतः उपदेशमें ऐसा कहा है कि इन संवेगादिकमें चित्तको लगाओ।

अब आगे गुण-दोषोंके कथनमें प्रथम सम्यक्त्वके आठ गुण कहते हैं, और बादमें पच्चीस दोष कहेंगे॥

प्रश्न—पांच भावोंमेंसे बन्धका कारण कौन?

उत्तर—एक उदयभाव और उसमें भी मोहरूप उदयभाव, वही बन्धका कारण है। अन्य कोई भाव बंधका कारण नहीं है।

प्रश्न—पांच भावोंमेंसे मोक्षका कारण कौन?

उत्तर—उपशमभाव, क्षायिकभाव तथा सम्यक् क्षयोपशमभाव ये मोक्षके कारण हैं। पारिणामिकभाव बन्धका अथवा मोक्षका कारण नहीं है वह बन्ध-मोक्षके हेतुसे रहित है।

सम्यग्दृष्टिके निःशंकता आदि आठ गुण

आठ अंगसहित सम्यक्त्व धारण करनेका कहा, वे आठ अंग अर्थात् आठ गुण कौन कौनसे है ? यह दिखाते है—

[गाथा १२ तथा १३ का पूर्वार्ध]

जिन वचमें शंका न धार वृष, भव-सुख-वांछा भानै;
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व-कुतत्त्व पिछानै ।
निज गुण अरु पर औगुण ढांके, वा निजधर्म बढ़ावै;
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज परको सु दिढावै ॥१२॥
धर्मी सों गौ-वच्छ-प्रीति सम, कर जिनधर्म दिपावै;
इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनकों सतत खिपावै ।

परद्रव्यासे भिन्न अपने शुद्ध परमात्मतत्त्वकी रुचि-प्रतीत-श्रद्धा सो सम्यग्दर्शन है, उसकी अद्भुत महिमा है। ऐसे सम्यग्दर्शनकी प्रथम शंकादि आठ दोषोंके अभावरूप निःशंकतादि आठ गुण होते हैं, उनका यह वर्णन है—

१. जिनवचनमें शंका नहीं करना।

२. धर्मके फलमें सांसारिक सुखकी वांछा नहीं करना। सांसारिक सुख वह तो पुण्यका फल है, वह वीतरागी धर्मका फल नहीं है। [illegible] नहीं होती।

३. मुनिके देहकी मलिनता आदिको देखकर धर्मके प्रति घृणा

डेढ़ गाथामे आठ गुण दिखाये हैं, आगेकी डेढ़ गाथामे पच्चीस दोष कहेंगे।)

* १. निःशंकता-अंगका वर्णन *

सर्वज्ञदेवने जैसा कहा वैसा ही जीवादि तत्त्व है, उसमे धर्मीको शंका नही होती। उसने सर्वज्ञके स्वरूपका निर्णय तो किया है, अतः पहचान सहितकी निःशंकताकी यह बात है; पहचानके बिना मान लेनेकी यह बात नही है। जीव क्या है, अजीव क्या है इत्यादि तत्त्वोंको अरिहन्तदेवके कहे अनुसार स्वयं समझकर उनकी नि.शंक श्रद्धा करना चाहिए, यदि कोई सूक्ष्म तत्त्व समझनेमे न आवे और विशेष जाननेकी जिज्ञासासे सन्देहरूप प्रश्न हो—तो इससे कहीं जिनवचनमे सन्देह नहीं हो जाता। सर्वज्ञकथित जैनशास्त्रोंमें जो कहा है वह सच्चा होगा, कि आधुनिक विज्ञानवाले लोग कहते है वह सच्चा होगा?—ऐसा सन्देह धर्मीको नहीं रहता। अहा, सर्वज्ञस्वभाव जिसकी प्रतीतमे आया, परम अतीन्द्रियवस्तु जिसकी प्रतीतमे आई, उसे सर्वज्ञकथित छहद्रव्य, उत्पाद-व्यय-ध्रुव, द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि (-अपनेको वे प्रत्यक्ष न होते हुए भी) उनमें शंका नहीं रहती। निश्चयमे अपने ज्ञान-स्वभावरूप आत्मामे परम निःशंकता है, और व्यवहारमें देव-गुरु-धर्ममे निःशंकता है। क्या जैनधर्म एक ही सच्चा होगा, कि जगतमे जो दूसरे धर्म कहलाते है वे भी सच्चे होगे?-ऐसी शंका जिसके है उसे तो स्थूल मिथ्यात्व है, व्यवहारधर्मकी निःशंकता भी

उसके नहीं है। वीतरागी जैनधर्मके अतिरिक्त अन्य किसी मार्गकी मान्यता धर्मीके कभी नहीं होती।

जैन बालक अपनी माताके सामने निःशंक है कि यह मेरी मा मेरा भला ही करेगी, उसको कोई सन्देह नहीं होता कि—कोई मुझे मारेगा तो मेरी मा मेरेको बचावेगी कि नहीं? ऐसे जिनवाणी-माताकी गोदमें धर्मी निःशंक है कि यह जिनवाणी मा मुझे स्वरूप दिखाकर मेरा हित करनेवाली है, संसारसे वह मेरी रक्षा करेगी। जिनवाणीमें उसे सन्देह नहीं रहता। परमेश्वर—वीतराग-सर्वज्ञ भगवान जिनपरमात्मा—जिन्होंने अपने केवलज्ञानमें वीतराग-भावसे सारे विश्वको देखा है, ऐसे परमात्माको पहिचानकर उनमें निःशंक होना, और उनके कहे हुए मार्गमें तथा जीवादि तत्त्वोंमें निःशंक होना—यह निःशंकता गुण है।

पुण्यको या पुण्यके फलको वे नहीं चाहते, धर्मसे मुझे स्वर्गादिका सुख मिले-ऐसी वांछा सो भवसुखकी वांछा है, ऐसी वांछा अज्ञानीके होती है। ज्ञानीने तो अपने आत्मिक सुखका अनुभव किया है अतः अन्यत्र कहींपर भी उसे सुखबुद्धि नहीं है, इसलिये वह निष्कांक्ष है। सम्यग्दृष्टिने आत्मिक सुखका वेदन करके भवसुखकी वांछा नष्ट कर दी है। यही उसका निष्कांक्षगुण है। 'भवसुख' यह अज्ञानीकी भाषामें कहा है. सचमुचमें भवमें सुख है ही नहीं, किन्तु अज्ञानी लोग देवादिके भवमें सुख मानते हैं, इन्द्रियविषयोंमें सुख मानते हैं,-आत्माके सुखको तो वे पहचानते नहीं। अरे, सम्यग्दृष्टि तो आत्माके सुखका स्वाद लेनेवाला, मोक्षका साधक! वह संसार-भोगको क्यों इच्छे? जिसके वेदनमें जीव अनादिकालसे दुःखी हुआ उसकी वांछा ज्ञानी कैसे करे? भव-तन-भोग यह तो ज्ञानीको अनादिकालकी उच्छिष्टके समान (वमनके समान) दीखते हैं, जीव अनन्तबार इन्हें भोग चुका परन्तु सुखकी एक बून्द भी इनमेंसे न मिली।

धर्मका प्रयोजन क्या है?—धर्मका प्रयोजन, धर्मका फल तो आत्मसुखकी प्राप्ति है, धर्मका फल कहीं बाहरमें नहीं आता। जिसने आत्मसुखका स्वाद नहीं जाना उसके अन्तरमें संसार भोगकी वांछा रहा करती है, तथा उसके कारणरूप पुण्यकी व शुभरागकी रुचि बनी रहती है, अतः उसे सच्चा निष्कांक्षपना नहीं होता। भले ही वह राजपाट घर-परिवार इत्यादिको छोड़कर त्यागी हुआ है परन्तु अन्तरमें रागसे भिन्न चैतन्यसुखका स्वाद नहीं लिया

और धर्मात्मा तो रत्नत्रयसे महा पवित्र है। शरीरमें मलिनता हो कि दुर्गंध-वह तो जड़का धर्म है। ऐसा कोई नियम नहीं है कि धर्मीका शरीर कुरूप न हो, धर्मीका शरीर कुरूप भी हो, आवाज भी स्पष्ट न निकलती हो,—लेकिन इससे क्या? अन्तरमें तो धर्मात्मा अपनेको देहसे भिन्न अशरीरी ज्ञानमय अनुभव करते हैं। रत्नकरंडश्रावकाचारमें समन्तभद्र महाराज कहते हैं कि—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नम् अपि मातङ्गदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥ २८ ॥

चाडालके देहमें रहा हुआ भी सम्यग्दृष्टि आत्मा देव समान शोभता है,-भस्मसे ढँके हुए अग्निके अंगारकी तरह देवरूपी भस्मके अन्दर सम्यक्त्वरूप ओजससे वह आत्मा शोभता है, वह प्रशंसनीय है। इस प्रकार आत्माके सम्यक्त्वको पहचाननेवाले जीव शरीरादिककी अशुचिको देख करके भी धर्मात्माके प्रति घृणा-तिरस्कार नहीं करते, किन्तु उनके पवित्र गुणोंके प्रति प्रेम व आदर करते है, ऐसा निर्विचिकित्सा अंग है। (इस निर्विचिकित्सा-अंगके लिये उदायन राजाका दृष्टांत शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है वह 'सम्यक्त्व कथा' आदिमें आप पढ सकते हैं।)

किसी धर्मात्माके पुण्य अल्प हो—उससे क्या? पुण्य तो उदयभावका फल है, उससे आत्माकी कहीं शोभा नहीं, आत्मा तो सम्यक्त्वादिसे ही शोभता है। धर्ममें तो गुणसे ही शोभा है, पुण्यसे नहीं। कुत्ता जैसा एक तिर्यंच भी यदि सम्यक्त्वसहित हो तो शोभा

वीतराग-सर्वज्ञ अरिहंत व सिद्ध परमात्माको छोड़कर अन्य किसी देवको वह नहीं मानता।

रत्नत्रयधारी निर्ग्रन्थ मुनिराजको छोड़कर अन्य किसी कुगुरुको वह नहीं मानता।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो वीतरागधर्म उसके अतिरिक्त अन्य कोई धर्मको वह मोक्षका कारण नहीं मानता, और उसका सेवन भी नहीं करता।

—इस प्रकार देव-गुरु-धर्मके सम्बन्धमें धर्मीको मूढ़ता नहीं होती। कुदेव-कुगुरु-कुधर्मको माननेवाला जीव समाजमें करोड़ों मूढ़ लोगोंके द्वारा पूजा जाता हो। अरे! देव उसके पास आते हों तो भी धर्मीको मार्गकी शंका नहीं होती, और तत्त्वनिर्णयमें वह नहीं घबराता। निश्चयरूप जो अपना शुद्ध आत्मस्वरूप है उसमें तो वह निःसंदेह है, दृढ़ है और व्यवहारमें अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र-तत्त्व इत्यादिके निर्णयमें भी वह निःसंदेह है, दृढ़ है। सुखका मार्ग ऐसा वीतराग जैनमार्ग, और दुःखका मार्ग ऐसा कुमार्ग, उसकी अत्यन्त भिन्नता जानकर कुमार्गकी सेवा-प्रशंसा-अनुमोदना सर्व प्रकारसे छोड़ देता है।

कुमार्गके माननेवाले बहुत जीव हों और सत्यमार्गके जाननेवाले जीव बहुत कम हों—किन्तु इससे धर्मात्माको घबराहट नहीं होती कि कौनसा मार्ग सच्चा होगा? अरे, चाहे मैं अकेला होऊँ तो भी मेरे हितका मार्ग मैंने जान लिया है वही परम सत्य है, और ऐसा हितमार्ग दिखानेवाले वीतरागी देव-गुरु ही

सच्चे हैं। स्वानुभवसे मेरा आत्मतत्त्व मैंने जान लिया है, इससे विरुद्ध जो कोई मान्यता हो वे सब झूठी हैं· ऐसी निःशंकतासे धर्मी जीवने कुमार्गकी मान्यताको असंख्य आत्मप्रदेशमेंसे निकाल दी है। वह शुद्ध दृष्टिवंत जीव किसी भयसे-आशासे-स्नेहसे या लोभसे कुदेवादिके प्रति प्रणाम-विनयादि नहीं करता।

अरे जीव! तुझे ऐसा मनुष्यत्व मिला, ऐसा सत्य धर्मका योग मिला, तो अब इस अवसरमें तेरी विवेकबुद्धिसे सत्य-असत्यकी परीक्षा द्वारा निर्णय कर; आत्माके लिये परम हितकार ऐसे सर्वज्ञ भगवानके मार्गका स्वरूप समझकर उसका सेवन कर, और कुमार्गके सेवनरूप मूढ़ताको छोड़। अरिहंतभगवानका मार्ग जिसने जान लिया है वह जीव जगतमें कहीं भ्रमित नहीं होता, भगवानके मार्गका निःशंकतासे सेवन करता हुआ वह मोक्षको साधता है। सम्यग्दृष्टिका ऐसा अमूढ़दृष्टि-अंग है। (इस अमूढ़दृष्टि अंगके पालनमें रेवती-रानीका उदाहरण शास्त्रमें प्रसिद्ध है, वह 'सम्यक्त्वकथा' आदि पुस्तकोंमें देख लेना चाहिए)। इस प्रकार सम्यक्त्वके चौथे अंगका वर्णन किया।

धर्मी जानते हैं कि मेरे गुण मेरेमें ही हैं मेरी अनुभूतिमें मेरा आनन्द प्रसिद्ध हुआ है—इसको मैं स्वयं जानता हूं, दुनियाको दिखानेका क्या काम है? क्या दुनियाके माननेसे मेरे गुणकी शुद्धि बढ़ती है? और दुनियाके न देखनेसे क्या मेरे गुणकी शुद्धि रुकती है?—नहीं, मेरा गुण तो मेरेमें है। कोई धर्मात्माके गुणोंकी जगतमें सहज प्रसिद्धि हो यह बात अलग है, परन्तु धर्मीको तो अपनेमें ही तृप्ति है, दुनियामें प्रसिद्धिकी कोई दरकार नहीं है। दुनियां स्वीकार करे तभी मेरा गुण सच्चा—ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है, और दुनियां स्वीकार न करे तो मेरे गुणको कोई नुकसान हो जाय—ऐसा भी नहीं है मेरे गुण मैंने दुनियाके पाससे तो नहीं लिये हैं, मेरे आत्मामेंसे ही गुण प्रगट किये हैं, अत मेरे गुणमें दुनियाकी अपेक्षा मुझे नहीं है।—इस प्रकार धर्मी जगतसे उदास निजगुणमें निःशंक वर्तते हैं।

धर्मात्माको जातिस्मरणादि ज्ञान हो जाय, ज्ञानकी शुद्धताके साथ अनेक लब्धियां भी प्रगटे, अनेक मुनिवरोंको विशेष ऋद्धि प्रगट हो जाय, अवधि-मनःपर्ययज्ञान भी हो जाय,—परन्तु जगतको यह मालूम भी न हो, वे तो अपने अन्तरमें आनन्दकी मस्तीमें अनुभव करते हैं। अपनी पर्यायमें अपने गुणोंकी प्रसिद्धि हो

अवगुण भी गुप्त रखकर उन्हें दूर करनेका उपाय करते हैं। भाई, किसीका अवगुण प्रसिद्ध हो इससे तुझे क्या लाभ? और उसके अवगुण प्रसिद्ध न हो उससे तुझे क्या नुकसान? जो करेगा वह भोगेगा,—अतः दूसरेके गुण-दोषका फल उसे ही है, उसमें तुझे क्या? इसलिये समाजमें धर्मकी निंदा न हो और प्रभावना हो, तथा गुणोंमें वृद्धि हो—इस प्रकार धर्मी प्रवर्तते हैं।

किसी भी तरह अपनेमें एवं परमें गुणकी वृद्धि हो और दोष दूर हो, आत्माका हित हो और धर्मकी शोभा बढ़े-इस प्रकार धर्मीका प्रवर्तन होता है। कोई साधर्मीजनमें कोई दोष हो गया हो और अपने ध्यानमें आ जाय तो उसको गुप्तरूपसे बुलाकर धर्मात्मा प्रेमसे समझाते हैं कि—देखो भाई! अपना जैनधर्म तो महान पवित्र है, महान भाग्यसे अपनेको ऐसा धर्म मिला है, उसमें तेरेसे इतना दोष हो गया, परन्तु इससे तुम घबड़ाना मत, तुम आत्माके श्रद्धा-ज्ञानमें दृढ़ रहना। जिनमार्ग महान पवित्र है, अत्यंत भक्तिसे उसकी आराधना करके तुम अपने सभी दोषोंको छेद डालना,—इसप्रकार प्रेमसे उसे धर्मका उत्साह बढ़ाकर उसके दोष दूर कराते हैं। दोषोंके छिपानेमें कहीं उसके दोषोंको उत्तेजन देनेका आशय नहीं है, परन्तु तिरस्कार करनेसे तो वह जीव निरुत्साह हो जाय और बाहरमें भी धर्मकी निंदा होगी—अतः ऐसा न होने देनेका आशय है तथा गुणकी प्रीतिसे शुद्धिकी वृद्धिका हेतु है।-ऐसा धर्मीका उपगूहन तथा उपबृंहण-अंग है। इस अंगके पालनमें जिनेन्द्रभक्त एक सेठकी कथा पुराणमें प्रसिद्ध है, वह 'सम्यक्त्व-कथा' आदिमेंसे देख लेना। इस प्रकार सम्यक्त्वके पांचवें अंगका वर्णन हुआ।

[illegible] ऐसा मनुष्य अवतार और सत् [illegible] मिला है उसे अवसरको यदि चूक जाओगे तो फिर [illegible] ऐसा अवसर मिलना कठिन है। इस समयमें जरासी प्रतिकूलताके डरसे उदास यदि धर्मकी आराधनासे चूक जाओगे तो फिर संसार-समुद्रमें नरकादिका अनन्त दुःख भोगना पड़ेगा, नरकादिके तीव्र दुःखके समक्ष यह प्रतिकूलता तो कुछ गिनतीमें नहीं है, अतः कायर होकर आर्त्त परिणाम न करो, वीर होकर धर्मध्यानमें दृढ़ रहो। आर्त्तध्यान करनेसे तो और भी दुःख बढ़ जायगा। संसारमें तो प्रतिकूलता होती ही है, अतः धैर्यपूर्वक धर्मध्यानमें दृढ़ रहो। तुम तो मुमुक्षु हो, धर्मके जाननेवाले हो, ज्ञानवान हो; इस प्रसंगमें दीन होकर धर्मसे डिग जाना तुझे शोभा नहीं देता, अतः वीरतापूर्वक आत्माको सम्यक्त्वादिकी भावनामें दृढ़तासे लगाओ। पहले अनेक महापुरुष पांडव, सीताजी इत्यादि हुए हैं। उन्हें स्मरण करके आत्माको धर्मकी आराधनामें उत्साहित करो। अतः अपने एवं परके आत्माको सम्बोधन करके धर्ममें स्थिर करते हैं, यह सम्यग्दृष्टिका स्थिति-करण-अंग है। प्रतिकूलता आने पर आप स्वयं धैर्य न छोड़े, और अन्य साधर्मीको भी घबराहट न होने दे—उन्हें भी धैर्य बंधावे। अरे, चाहे मरण भी आवे, या कितनी भी प्रतिकूलता आवे, परन्तु मैं कभी अपने धर्मसे चलायमान नहीं होऊँगा, आत्माकी आराधनाको नहीं छोडूँगा—ऐसे निःशंक दृढ़ परिणामसे धर्मी अपने आत्माको

रहा हूं उसी धर्मकी यह साधना कर रहे हैं, अतः यह मेरे साधर्मी हैं, मेरे साधर्मीको कोई दुःख न हो, उन्हें धर्ममें कोई विघ्न न हो,—इसप्रकार साधर्मीके प्रति वात्सल्य होता है। यद्यपि राग तो है परन्तु उस रागकी दिशा संसारकी ओरसे पलटकर धर्म सन्मुख हो गई है। संसारमें स्त्री-पुत्र-धन आदिका राग वह तो पाप-बंधका कारण है, और साधर्मीके प्रति धर्मानुरागसे तो धर्मकी भावनाका पोषण होता है। अन्तरंगमें तो धर्मीको अपने शुद्ध ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप आत्मामें परम प्रीति है; उसे ही वह अपना स्वरूप जानता है; वह परमार्थ वात्सल्य है और व्यवहारमें रत्नत्रयके धारक अन्य साधर्मी जीवोंको अपना समझकर उन पर परम प्रीतिरूप वात्सल्य आता है। धर्मात्मा पर आये हुए दुःखको धर्मी देख नहीं सकते। इस प्रकारसे उनका दुःख मिटानेका उपाय करते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीवको किसी भी जीवके प्रति वैरभाव नहीं होता, तो फिर धर्मीके प्रति ईर्षा कैसे हो? दूसरे जीव अपनी अपेक्षा आगे बढ़ जायें वहाँ उसे द्वेष नहीं होता परन्तु अनुमोदना और प्रेम आता है। साधर्मीको एक-दूसरेके प्रति प्रेम होता है,—कैसा प्रेम? माँ को अपने पुत्र पर प्रेम हो वैसा निर्दोष प्रेम, गायको अपने बछड़े पर प्रेम होता है वैसा निस्पृह प्रेम धर्मीको साधर्मीके प्रति होता है। अभी इनके दुःखमें मैं सहायता करूँगा, तो भविष्यमें किसी समय वह मुझे काममें आयेंगे-ऐसी बदलेकी भावना नहीं रखते। परन्तु धर्मके सहज प्रेमवश निस्पृह भावसे धर्मीके प्रति वात्सल्य रखते हैं।

योग मिलना बहुत दुर्लभ है है। ऐसे मार्गको प्राप्त कर अपना हित कर लेना चाहिए। जितना रागभाव है उसे धर्मी अपने स्वात्मस्वभावसे भिन्न जानता है, और निश्चय सम्यक्त्वादि वीतरागभावको ही स्वधर्म जानकर उसका आदर करता है। धर्मका ऐसा स्वरूप समझ कर उसकी प्रभावना करता है। जो केवल व्यवहारके शुभ विकल्पोंको ही धर्म मान लेते हैं, और राग रहित निश्चय धर्मको समझते ही नहीं, उन्हें तो अपनेमें किंचित् धर्म नहीं होता, अर्थात् सच्ची धर्मप्रभावना भी उन्हें नहीं होती। अपनेमें धर्म हो तो उसकी प्रभावना करे न? यहाँ तो अन्तरमें अपने शुद्धात्माका अनुभव करके निश्चयधर्म सहितके व्यवहारकी बात है। अरे, वीतरागके सत्य मार्गको भूलकर अज्ञान द्वारा कुमार्गके सेवन द्वारा जीव अपना अहित कर रहे हैं, वे ज्ञान द्वारा सच्चा मार्ग प्राप्त करें और अपना हित करें—ऐसी भावनासे धर्मी जीव ज्ञानके प्रचार द्वारा सत्यधर्मकी प्रभावना करते हैं, सत्यमार्गको स्वयंने जाना है और उसकी प्रभावना करते हैं।

—इस प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव शंकादिक आठ दोष रहित और निःशंकतादि आठ गुण सहित सम्यक्त्वकी आराधना करता है। तदुपरान्त आठ मद भी उसे नहीं होते।

(९ से १६) आठमद–कुलमद, जातिमद, रूपमद अर्थात् शरीरमद, विद्यामद अर्थात् ज्ञानमद, धनमद अर्थात् ऋद्धिमद, बलमद, तपमद और अधिकारमद अर्थात् पूजामद, ऐसे आठ प्रकारके मदरूप आठ दोष सम्यग्दृष्टिको नहीं होते।

(१७ से २२) छह अनायतनः–कुदेव उसका सेवक, कुगुरु उसका सेवक, कुधर्म उसका सेवक—ये छहों धर्मके लिये अस्थान हैं इसलिये वे अनायतन हैं, उनसे धर्म नहीं होता, धर्मी जीव उनका सेवन तो नहीं करता, और उसकी प्रशंसा भी मनसे वचनसे या कायसे नहीं करता। इस प्रकार छह अनायतनकी प्रशंसारूप छह दोष सम्यग्दृष्टिके नहीं होते।

(२३ से २५) तीन मूढ़ता.–मूढ़ लोकोंमें देवके नाम पर, गुरुके नामपर व शास्त्रके नामपर अनेक विपरीत रूढ़ियाँ चलती हैं, परन्तु धर्मी जीव देव-गुरु-शास्त्र संबंधी कोई मूढ़ताका सेवन नहीं करता, वीतरागमार्गके जिनेश्वरदेव, रत्नत्रयधारक निर्ग्रंथ जिनमुनि, और उनके द्वारा उपदिष्ट वीतरागतापोषक जिनशास्त्र, उनको ही सत्य मानता है, उनके ही आदर-सत्कार, नमस्कार-प्रशंसा करता है। उनके सिवाय अन्य कोई भी कुदेव-कुदेव-कुशास्त्रको स्वप्नमें भी नहीं मानता, न उन्हें नमस्कारादि भी करता है। इसप्रकार तीन मूढ़तारूप तीन दोष सम्यग्दृष्टिके नहीं होते।

जानते थे कि हमारे चैतन्यके अखण्ड वैभवके अतिरिक्त एक रजकण भी हमारा नहीं है। हम उसके स्वामी नहीं हैं। हम छह खण्डके स्वामी नहीं है, परन्तु अखण्ड आत्माकी अनुभूतिके स्वामी हैं। इस प्रकार वे चैतन्यकी अनुभूतिमें बाह्यवैभवका स्पर्श भी नहीं होने देते थे। अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा आत्मसम्पदाके अचिंत्य वैभवका स्वसंवेदन जिसने किया, उसे जड़ या विकारके फलका अभिमान कहाँसे रहे? इसप्रकार धर्मीको धनमद नहीं होता, उसी प्रकार कोई अन्य धर्मात्मा-गुणवान जीव अशुभ कर्मके वश दरिद्र हो, तो उसके प्रति उसको अवज्ञा या तिरस्कारबुद्धि नहीं होती। अरे आत्माके चैतन्यनिधानके निकट जगतके वैभवको तुच्छ-सड़े हुए तृण समान समझकर उसे क्षणभरमें छोड़कर, चैतन्यके केवलज्ञान-निधानको साधनेके लिये अनेक मुमुक्षु जीव मुनि होकर वनमें चले गये। अज्ञानी जीव उस धनादि जड़ सामग्रीके समक्ष अपने सुखकी भीख मांगते हैं। ज्ञानी तो उसका त्याग करके अपने चैतन्य-सुखकी साधना करते हैं। अज्ञानीको पुण्यकर्मके उदयसे धनादि सामग्री मिले, वहाँ तो उसे अभिमान हो जाता है कि मैं कितना बड़ा हो गया हूँ। अरे, भाई! अपने इस अभिमानको छोड़ दे, और अपने चैतन्यनिधानको देख। आत्माकी चैतन्य-सम्पदाके सन्मुख तेरी इस जड़ विभूतिका क्या मूल्य है।

देखो तो सही, सन्तोंने आत्माके वैभवका कैसा वर्णन किया है। ऐसा वैभव अन्तरमें है, यह बताया है। ऐसे वैभववाले अपने आत्माको जहाँ अनुभवमें लिया वहाँ धर्मीको धनयौवन आदि वैभवका मद नहीं रहता।

परमेश्वर है-उसके समक्ष ऐसा कोनसा ऐश्वर्य या महत्ता है कि जिसका मैं मद करूँ? अरे, राग और रागका फल वह तो सब अपद है-अपद है। लोग बाह्य पदवीके लिये लालायित रहते हैं, लेकिन धर्मी जानता है कि मेरे चैतन्यके पदके सन्मुख चक्रवर्तीपद भी तुच्छ प्रतीत होता है। ऐसा चैतन्यपद जिसने प्राप्त किया है (जाना है और अनुभव किया है) वह अन्य किस पदका अभिमान करे? अहा, तीनलोकमें सबसे उच्च ऐसा मेरा चैतन्यपद मैंने अपने अन्तरमें देखा है। अन्तरमें आनन्दकी अपूर्व वीणा बजी है। अतीन्द्रिय सुखकी तरंगोंसे चैतन्य समुद्र उमड़ पड़ा है।—ऐसा आनन्दस्वरूप मैं स्वयं हूँ.. आनन्दसे उच्च जगतमें दूसरा क्या है? ऐसी आत्म अनुभूतिके द्वारा धर्मात्माको जगतके ऐश्वर्यका मोह नष्ट हो गया है, इसलिये उसे कहीं ऐश्वर्यका मद नहीं होता। उच्च अधिकार हो. लखों-करोड़ों लोगोंमे पूजता हो. सम्पूर्ण देशमें

सम्यग्दृष्टिके लेश भी संयम-व्रत न होनेपर भी दृष्टि अपेक्षासे वह सारे लोकालोकसे उदासीन हो गया है, उसका आदर देव भी करते हैं—

"वाह! धन्य आपकी आराधना, धन्य आपका अवतार;
भवका किया अभाव ऐसा धन्य आपका अवतार;
सम्यग्दर्शनसे आपने मानव जीवनको सफल किया;
आप जिनेश्वरके पुत्र हुए और मोक्षके साधक हुए।

इन्द्र स्वयं भी सम्यग्दृष्टि है, अवधिज्ञानी है, उसने सम्यक्त्वकी महिमा अपने अन्दर अनुभूत की है इसलिये असयमी मनुष्यके या तिर्यंचके भी सम्यग्दर्शनकी वह प्रशंसा करता है। भले ही वस्त्रादि परिग्रह हो, इससे कहीं सम्यग्दर्शनरत्नका मूल्याकन कम नहीं हो जाता। जैसे फटे-तूटे-मलिन वस्त्रसे लिपटा हुआ अमूल्य रत्नका मूल्य कुछ कम नहीं हो जाता, वैसे गृहस्थका सम्यक्त्वरूपी अमूल्यरत्न असंयमरूपी मलिन वस्त्रमें लिपटा हुआ हो तो भी उसका मूल्य कुछ भी कम नहीं हो जाता। सम्यग्दर्शनके होनेसे वह गृहस्थ भी मोक्षका पथिक है।

सम्यग्दृष्टि आत्माके आनन्दमें रहनेवाला है, जहाँ आत्माके आनन्दरसका स्वाद लिया कि जगतके समस्त विषयोंका प्रेम छूट गया। उसकी दशा कोई परम गंभीर है, वह बाहरसे नहीं पहचाना जाता। उसने निरंतर स्वभावका अनुभव करके जिसने भवका अभाव किया है ऐसे सम्यग्दर्शनकी महिमा अचिन्त्य है, अनादिके

सम्यग्दर्शनसम्पन्नम् अपि मातंगदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्म गुढांगारान्तरौजसम् ॥ २८ ॥

चाण्डाल शरीरमे ऊपजा हो तो भी जो जीव सम्यग्दर्शन-सम्पन्न है उसे गणधरदेव 'देव' कहते हैं; भस्मसे ढके हुए तेजस्वी अंगारकी तरह वह जीव सम्यक्त्वसे शोभते है। सम्यग्दृष्टि तिर्यंचपर्यायमे हो या स्त्री पर्यायमे हो तो भी सम्यक्त्वके प्रतापसे वह प्रशंसनीय है। तीर्यंच पर्याय या स्त्री पर्याय लोकमे सामान्यतः निंदनीय होती है, परन्तु वह भी यदि सम्यग्दर्शन सहित हो तो प्रशंसनीय है। भगवती-आराधनामें भी सम्यग्दृष्टि स्त्रीकी बहुत प्रशंसा की है। (देखिये गा. ९९४ से ९९९)

गृहस्थ सम्यग्दृष्टि स्त्री हो पुत्रादि सहित भी हो, किन्तु वह गृहमे राचते नहीं, उनकी रुचि आत्मामें है। जिनको आत्मासे भिन्न जान लिया उनकी रुचि कैसे रहे? स्वानुभवके द्वारा स्व-परका विभाग कर दिया है कि मैं ज्ञानानंदस्वरूप ही हूं, और शुद्धात्माके विकल्पसे लेकर सारी दुनिया-अब मेरेसे भिन्न है,—ऐसी भेदज्ञान दृष्टिकी अपार महिमा है, उसका अपार सामर्थ्य है, अहा, उसने अपनी अंतरकी परिणमन धारामे आनंदमय स्वघर देखा है, वह रागको पर घर समझकर उसमे जाना नहीं चाहता; चित्त चैतन्य-धाममें लगा है वहांसे हटता नहीं, और जहांसे जुदा हुआ वहां जाना नहीं चाहता।

आठ वर्षकी छोटी बेटी हो, सम्यग्दर्शन प्रगट कर लिया हो, और उसके माता-पिताको खबर पड़े, तो वे भी कहते है कि-वाह,

बेटी! धन्य है तेरा अवतार! तूने आत्माका काम करके जीवन सफल किया। आत्मामें सम्यक्त्व-दीपक प्रगटा कर तूने मोक्षका पथ पकड़ लिया। उम्र भले छोटी हो, किन्तु जिसने आत्माको साध लिया वह प्रशंसनीय है, देव भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव परभावोंसे एवं संयोगोंसे अलिप्त रहता है, उसमें विशेष त्याग भले न हो, असंयमी हो, गृहवासमें स्त्री-पुत्रके बीच रहता हो, तो भी अंतरकी दृष्टिमें वह कितना अलिप्त है?-यह बात यहाँ तीन दृष्टान्तसे समझायी गयी है—

नहीं हुआ है, ज्ञान परभावके किसी भी अंशको नहीं छू
ही अलग अलिप्त ही रहता है। इसप्रकार सम्यग्दृष्टि
रहा हो तो भी जलकमलवत् अलिप्त ही है।

(२) जैसे सुवर्ण कीचड़के बीच पड़ा हो तो भी उसे
जंग नहीं लगता, सोनेका स्वभाव ही जंगसे रहित है, वैसे
रूपी कीचके बीच रहते हुए भी धर्मात्माका सम्यग्दर्शन सा
शुद्ध है, वह मलिन नहीं होता। चैतन्यबिंब आत्मा जिस
आया उस दृष्टिकी शुद्धतामें ऐसा सामर्थ्य है कि वह कि
परभावको अपनेमें आने नहीं देती, रागादि परभावके
भी श्रद्धा-ज्ञान तो सोटंचके सोने जैसे शुद्ध वर्तता है
और विकल्पको वे अत्यन्त भिन्न ही रखते हैं। विकल्पका
ज्ञानमें नहीं देना, ज्ञान विकल्परूप नहीं होता। ऐसे ज्ञ
सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा प्रशंसनीय है।

ऐसा कहा है कि, सम्यग्दृष्टि चलते हुए भी स्थिर है,
हुए भी मौन है,—क्योंकि शरीरसे और वचनसे अत्यंत
अपना चेतनस्वरूप जान लिया है उसमें ही वे वर्तते है, अत
दृष्टि और ज्ञान तो निजभावमें स्थिर बैठे है, वे कहीं विकल्प
या वाणीमें नहीं जाते, इसलिये ज्ञानी तो स्थिर ही है। अ
ज्ञानीकी ऐसी अंतरंग दशाको कोई विरले ही पहचानते हैं।
दृष्टिसे देखनेवाले लोग ज्ञानीको नहीं पहचान सकते।

सम्यग्दृष्टि जीवड़ा करे कुटुंब प्रतिपाल।
फिर भी अंतरसे तो भिन्न है, ज्यों धाय खिलावे बाल॥

धायमाता बच्चेको पुत्रकी तरह ही प्रेम करके सम्हालती है-खिलाती है, लालपाल करती है, 'पुत्र' कहके बुलाती है, फिर भी अन्तरमें उसको भान है कि इस पुत्रको जन्म देनेवाली माता मैं नहीं हूं, यह मेरा पुत्र नहीं है; वैसे धर्मात्मा शरीरादिकी चेष्टा करता हुआ दिखनेमें आवे, 'यह मेरा घर' इत्यादि भाषा भी बोलता हो, परन्तु अन्तरकी दृष्टिमें उसे भान है कि मैं तो चैतन्य हूं, मेरे चैतन्यभावके सिवाई अन्य कोई वस्तु रंचमात्र भी मेरी नहीं है; मेरी चेतना परभावकी जनेता नहीं है,-ऐसा भेदज्ञान ज्ञानीको एकक्षण भी नहीं छूटता, और परभावके साथ या संयोगके साथ जरा भी एकत्व नहीं होता।

(३) तीसरा दृष्टांत है नगरनारीके प्यारका। जैसे वेश्याका परपुरुषके प्रति जो प्रेम है वह सच्चा प्रेम नहीं है, उसे तो रुपयोंका प्रेम है, वैसे जिसने अपने चैतन्यतत्त्वको परसे अत्यन्त भिन्न अनुभव किया है ऐसे चैतन्यदृष्टिवंत धर्मात्माको, परवस्तु अपनी मानकर उसके प्रति प्रेम नहीं होता, उसका सच्चा प्रेम तो अपनी चैतन्यलक्ष्मीमें ही है। इस दृष्टांतसे धर्मीका अन्तरदृष्टिमें परके प्रति प्रेमका अभाव दिखलाया है। अपने चैतन्य सिवाय जगतमें कहीं भी परके प्रति आत्मबुद्धिसे उसे राग नहीं होता, अतः वह अलिप्त है।

इस प्रकार तीन दृष्टान्तों द्वारा सम्यग्दृष्टि-धर्मात्माका अलिप्त-भाव जानना। आत्माके सिवाय अन्यत्र कहीं भी उसका ममत्व [illegible] नहीं होता, आत्माके पास अन्य कोई चीज [illegible]

है तो संसार ही, उनमें कहीं भी वे जीव सुखी नहीं होते। सुखिया तो सम्यग्दृष्टि हैं-कि जिन्होंने चार गतिसे पार ऐसे अपने चैतन्यतत्त्वको देख लिया है।

दुनियाके लोग धन आदिके संयोग अनुसार सुख समझते हैं, आत्मिकसुखको वे नहीं जानते। वे लोग यह नहीं पूछते कि आपको कितना आत्मसुख है? परन्तु यह देखते हैं कि आपकी पास कितना धन-मकान है?-कितनी आय है? मानो अधिक पैसेसे अधिक सुख मिल जाता है—और पैसेके बिना मानों सुख हो ही नहीं सकता!-ऐसी अज्ञानी लोगोंकी भ्रमणा है। दुनिया तो बाहरसे ही देखनेवाली है।

अरे, शुभ विकल्प भी जहां दुःख है, उसमें भी सुख नहीं है, तब अन्यकी तो क्या बात? बिना सम्यग्दर्शन सुख देनेवाला कोई नहीं है। कोई संयोग ऐसा नहीं कि जो सुख दे सकता हो। सम्यक्त्व ही सभी धर्मका मूल है, 'सभी धर्म' कहनेसे ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जैनधर्म एवं अन्य धर्म, किन्तु सभी धर्म कहनेसे आत्माका ज्ञानधर्म-चारित्रधर्म-श्रावकधर्म-मुनिधर्म-सुखधर्म क्षमादि दशधर्म-वीतरागी अहिंसा धर्म,—ऐसे वीतरागी शुद्धभावरूप सभी धर्मोंका मूल सम्यग्दर्शन है, क्योंकि 'धर्मी' ऐसा अपना शुद्ध आत्मा, उसके लक्ष-प्रतीत-अनुभवके बिना उसके धर्मों (-शुद्ध पर्यायें) प्रगट नहीं होते। सम्यग्दर्शनमें शुद्धात्माको ध्येय बनाकर एकाग्र होनेसे श्रावकधर्म-मुनिधर्म-उत्तम क्षमादि धर्म-शुद्धोपयोग धर्म-परम अहिंसा धर्म-ध्यानरूप धर्म-सुख धर्म-स्वानुभवरूप धर्म-मोह

क्षोभ रहित परिणामरूप धर्म -ये सब वीतरागी धर्म खिल जाते हैं। अत धर्मका मूल सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शनके बिना जीव जो कुछ करे वह धर्म नहीं, उसमें सुख नहीं।

आत्माके सम्यग्दर्शन बिना ध्यान किसका करेगा? ध्यानके लिये जिसमें एकाग्र होना है वह वस्तु तो प्रतीतिमें आयी नहीं। इसीप्रकार 'स्वरूपमें चरना सो चारित्र' है, परन्तु जिस स्वरूपमें चरना है उसकी पहिचानके बिना चारित्र कैसा? वीतरागता करना चाहे परन्तु रागसे भिन्न चैतन्यके अनुभवके बिना वीतरागता होगी कैसे? रागसे लाभ मानकर वीतरागता कभी नहीं हो सकती। इस प्रकार सम्यग्दर्शन और स्वानुभवके बिना जीवको किसी प्रकारका धर्म या मोक्षमार्ग नहीं होता। जैसे मूलके बिना वृक्ष नहीं होता, वैसे सम्यग्दर्शनके बिना धर्म नहीं होता। ऐसे ही अज्ञानसे धर्म मान लेना वह तो मिथ्या है। जाननेवालेने जब स्वयंको ही नहीं जाना-तो धर्म कैसा?

प्रत्येक आत्मा स्वयं परमात्मा बन सकता है, उसे न जानकर अन्य परमात्माने इन आत्माओंको बनाया ऐसा माने, अथवा अन्य किसी परमात्माका अंश है ऐसा माने, (अर्थात् यह आत्मा स्वयं अखण्ड स्वतंत्र अविनाशी पदार्थ है-ऐसा न माने,) वे सब अज्ञानी हैं, उन्होंने न तो आत्माका स्वरूप जाना है, और न परमात्माको भी पहचाना है। ऐसे जीवोंको सम्यक्त्व नहीं होता, और सम्यक्त्वके बिना धर्म नहीं होता।

अत मुमुक्षु जीवको चाहिए कि अपने [illegible]

-धर्मका स्वरूप अच्छी तरह पहचाने, सर्व प्रकारके सन्देह छोड़कर वीतराग जैनमार्गके तत्त्वोंका सच्चा निर्णय करे, और परसे भिन्न अपने चिदानंदस्वरूप आत्मतत्त्वकी रुचि-प्रतीति-स्वानुभूति करके शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण करे,—यह सन्तोंका उपदेश है।

आत्म-शान्ति

भाई, तेरा आत्मस्वभाव ऐसा है कि उसके सन्मुख परिणमन करते ही आनन्द सहित निर्मल सम्यक्त्वादिका उत्पाद होता है। जगतके कोलाहलसे दूर होकर, तू अपने स्वभावको लक्षमें ले। जगत क्या करता है, क्या बोलता है—उसके साथ तेरे तत्त्वका कोई संबंध नहीं है, क्योंकि तेरा उत्पाद तुझमेंसे आता है, अन्यमेंसे नहीं आता।

स्वभावकी प्रतीति होने पर भी किंचित् राग द्वेष हो तो वह कहीं ज्ञानभावका कार्य नहीं है—इसप्रकार धर्मीको भिन्नताका भान है, इसलिये उस समय वह अपने ज्ञानभावको नहीं भूलता। —"आत्मवैभवसे"

वीतरागविज्ञान-प्रश्नोत्तर [३]

इसके पहलेके दो पुस्तकोंमें छहढालाके दो अध्यायके प्रवचनोंमेंसे ४४० प्रश्न-उत्तर दिये गये हैं। यहां तीसरी ढालके ३५४ प्रश्न-उत्तर दिये जाते हैं-जो छहढालाके अभ्यासमें विशेष उपयोगी होंगे।

४४६. सत्यार्थरूप मोक्षमार्ग कौनसा है?
जो निश्चयमोक्षमार्ग है वही सत्यार्थरूप है।

७. व्यवहारमोक्षमार्ग कैसा है?
वह कारणरूप अर्थात् निमित्त है, सत्यार्थरूप नहीं।

८. मोक्षके सत्य मार्ग कितने हैं?
सच्चा मोक्षमार्ग एक ही है दो नहीं।

९. निश्चय और व्यवहार दोनोंको सच्चा मोक्षमार्ग माने तो?
–तो पं. टोडरमलजी उसे मिथ्याबुद्धि कहते हैं।

५०. जैन सिद्धांतका सच्चा रहस्य कैसे समझमें आवे?
निश्चयनयसे जो निरूपण किया जाता है उसे सत्यार्थ मानकर उसकी श्रद्धा करनी चाहिये और व्यवहारनयका जो निरूपण किया हो उसे असत्यार्थ मानकर (वास्तवमें ऐसा नहीं है ऐसा समझकर) उसकी श्रद्धा छोड़ना–इस रीतिसे जैन सिद्धांतका सच्चा रहस्य समझा जा सकता है।

१ किसके आश्रयसे जीव सम्यग्दृष्टि होता है?
भूतार्थस्वभावके आश्रयसे जीव सम्यग्दृष्टि होता है।

२ मुनिराज किस रीतिसे मोक्षको साधते हैं?
निश्चयनयके आश्रयसे मुनिराज मोक्षको साधते हैं।

३. हजारों शास्त्रोंका भंडार किसमें भरा है?
समयसारमें।

४. निश्चय विना अकेले व्यवहारको कारण कहा जा सकता है?
नहीं–वह उपचारसे भी कारण नहीं कहा जा सकता।

४५५. ऐसा मोक्षमार्ग जानकर क्या करना?
उसकी आराधनामें आत्माको जोड़ना।

६. मुनिराजोंने आत्महितका क्या उपाय कहा?
'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः'

७. पुण्य तरफ जानेमें सुख है कि दुःख?
उसमें भी आकुलता है इसलिये दुःख है।

८. तो सुख किसमें है?
आत्माके शांत-निराकुल चैतनरसके अनुभवमें सुख है।

९. मोक्षमार्गमेंसे किसको निकाल दिया?
पाप और पुण्य दोनोंको मोक्षमार्गमेंसे निकाल दिया।

४६० पूर्ण सुखरूप मोक्षका मार्ग कैसा है?
वह मार्ग भी राग रहित निराकुल ही होता है।

६१. राग सहित व्यवहार रत्नत्रय कैसा है?
वह सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है।

६२. सच्चा मोक्षमार्ग कैसा है?
राग रहित निश्चय रत्नत्रयरूप है।

६३ मोक्षके लिये जिनवरने करने जैसा क्या कहा है?
राग रहित शुद्ध रत्नत्रय ही जिनवरने कर्तव्य है।

६४ मुमुक्षु जीवको किसमें लगना चाहिये?
निश्चय रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गमें अन्दर जाना चाहिये।

४६५. सुख क्या है?

आत्माका स्वभाव।

६. राग क्या है?

वह आत्माका स्वभाव नहीं है।

७ किसको जाननेसे सुख होता है?

सुख स्वभावी आत्माको जाननेसे सुख होता है।

८. सुख रागमें होता है कि वीतरागतामें?

वीतरागतामें ही सुख है, रागमें सुख नहीं।

९. रागमें और पुण्यमें सुख माने तो?

तो उसे राग और पुण्य रहित मोक्षकी श्रद्धा नहीं।

७०. आत्माके अतीन्द्रिय सुखको कौन जानता?

धर्मी ही उस सुखको जानता है।

१. वह सुख कैसे अनुभवमें आये?

वीतराग विज्ञानसे ही वह सुख अनुभवमें आता है।

२. पुण्य बाधनेके भावमें क्या है?

आकुलता और दुःख।

३. पुण्यफल भोगनेमें क्या होता है?

आकुलता और दुःख।

४. सुख कहां है?

आत्मा स्वयं सुखस्वरूप है, उसकी सन्मुखता ही सुख है।

४७५. किसके बिना सुख नहीं होता?

वीतराग विज्ञान बिना किसीको भी सुख नहीं होता।

६. धर्मी जीव किससे राजी हैं?

धर्मी जीव इन्द्रपदके वैभवमें राजी नहीं होता, वह तो चैतन्यके आनन्दमें ही राजी होता है।

७. जीव हैरान क्यों हो रहा है?

आत्मामें सुख है-उसको भूलनेसे।

८. बाह्य विषयोंमेंसे सुख क्यों नहीं मिलता?

वहां सुख है ही नहीं-फिर कहांसे मिले।

९. धनवान सुखी दरिद्र दुःखी-यह सच्चा?

नहीं निर्मोही सुखी और मोही दुःखी।

४८०. जड़ वैभवमें सुख है?

नहीं सुख तो आत्माका वैभव है।

१. भगवान सिद्ध और अरिहन्त क्या करते हैं?

बाह्यसाधनके बिना ही आत्माका आनन्द अनुभव करते हैं

२. मोक्षार्थीको क्या करना चाहिये?

मोक्षके मार्ग पर चलना चाहिये।

३. मोक्षका मार्ग क्या है?

वीतराग रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र।

४. क्या मोक्षमार्गमें राग आता है?

नहीं, राग तो बन्धमार्ग है वह मोक्षमार्ग नहीं।

४९४. व्यवहार मार्ग कैसा है?

वह पराश्रित है।

५. सच्चे मोक्षमार्ग कितने हैं।

एक ही है।

६. मोक्षमार्गके दूसरे नाम क्या हैं?

आनन्द मार्ग, मोक्षकी क्रिया, आराधना, धर्म, मोक्षका पुरुषार्थ, शुद्ध परिणति, मोक्षका साधन, अन्तर्मुखभाव, वीतरागता, वीतरागविज्ञान, तीर्थंकरोंका मार्ग आदि।

७. नय क्या है?

नय सच्चे ज्ञानका प्रकार है।

८. क्या अज्ञानीको एक भी नय होता है?

नहीं।

९. सच्चा नय किसको होता है?

आत्माके स्वानुभवसे सम्यग्ज्ञान करे उसे।

५००. निश्चय के बिना व्यवहार कैसा है?

मिथ्या है।

१ सम्यग्दर्शनके साथमें क्या होता है?

ज्ञान-चारित्र-आनन्द वगैरे अनन्त गुणोंका अंश प्रगट होता है।

२ क्या समुद्रमें डुबकी लगानेसे आनन्द होता है?

चैतन्यसमुद्रमें डुबकी लगानेसे आनन्द होता है।

३. चैतन्यका पदार्थ [illegible] पर [illegible] क्या निकलता है?

सम्यग्दर्शनादि [illegible] रत्न निकलते हैं।

५०४. तीन किमती रत्न कौनसे हैं ?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

५. अनंत रत्नोंकी खाण कौन है ?

चैतन्यप्रभु आत्मा स्वयं।

६. मेरुसे भी बड़ा चैतन्यरत्नका पहाड़ अज्ञानीको क्यों दिखता नहीं ?

क्योंकि उसकी दृष्टि समक्ष मिथ्यात्वका तिनका लगा है।

७. अरिहंतकी आत्माको वास्तवमे पहिचाने तो क्या हो ?

अपने आत्माका सच्चा स्वरूप पहिचाननेमें आये, अर्थात् दर्शनमोहका नाश होकर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

८. अरिहन्त प्रभुके द्रव्य-गुण-पर्याय कैसे हैं ?

वह तीनों चैतन्यमय हैं।

९. क्या उसमे जरा भी राग है ? नहीं।

१०. ऐसा जाननेसे क्या होगा ?

स्वयंमे चेतन और रागकी भिन्नताका अनुभव होता है।

१. अपने शुद्ध आत्माकी पहिचान, और अरिहन्तदेवकी पहिचान उसमे पहेला कौन ?

दोनों साथमे होते हैं।

२. उसकी पहिचान कब होती है ?

ज्ञान पर्याय अंतरमे ढले तब।

३. क्या रागसे मोक्षमार्ग शुरु होता है ?

नहीं, आत्माके अनुभवसे ही मोक्षमार्गकी शुरुआत होती है।

५१४. चैतन्यप्रभुको लक्षमें लेनेसे क्या हुआ?
आत्मामें आनन्द सहित केवलज्ञानके अंकुर फुटते हैं।

५. क्या शुभरागमेंसे ज्ञानके अंकूर आते हैं?—नहीं।

६. आनन्दका मार्ग कौनसा है?
आतमराम निजपदमें रमे वह आनन्दका मार्ग है।

७. रागादि भाव कैसे है?
वह परपद है, दुखका मार्ग है।

८. मोक्षका मार्ग किसमें समाता है?
स्वपदमें अर्थात् निजस्वरूपमें समाता है।

९. साधकका स्वसंवेदनरूप भावश्रुतज्ञान कैसा है?
वह केवलज्ञानकी ही जातिका है अतीन्द्रिय है।

५२०. सम्यक्चारित्र कैसा है?
शुभाशुभरागसे निवृत्तिरूप और शुद्ध चैतन्यमें प्रवृत्तिरूप सम्यक्चारित्र है।

१. शुभाशुभभाव कैसा है?
संसारका कारण है।

२. सम्यक्चारित्र कैसा है?
मोक्षका कारण है रागसे रहित है।

३. विकल्पमें चेतना है?
नहीं।

२४. चेतनामें विकल्प है?
नहीं, दोनोंका स्वरूप भिन्न है।

५. आत्मामें लीनतारूप सम्यक्चारित्र कब होता है?
आत्माको पहिचानकर अनुभव करे उसके बाद ही।

६. चौथागुणस्थानमें श्रद्धा-ज्ञानके साथमें चारित्र होता है?
हां, स्वरूपाचरणचारित्र होता है।

७. मुनिदशाका चारित्र कब होता है?
छट्ठा-सातमा गुणस्थानमें।

८. मोक्षमार्गकी शरुआत कब होती है?
चौथागुणस्थानसे।

९. आत्माको जाने बिना उसकी श्रद्धा हो सकती है क्या?
नहीं, दोनों साथमें होती है।

३०. ज्ञानीके ज्ञानमें नय कितने है?
अनंत।

१. ज्ञान मोक्षका साधक कब होता है?
अंतरमें वलण करके आत्माका अनुभव करे तब।

२. मोक्षमार्गमें निश्चय और व्यवहार कब लागू पड़ते हैं?
जहां सच्चा मार्ग प्रगट हो वहां।

३. अनंतकालसे राग करते हुये भी सुख क्यों नहीं मिला
क्योंकि सुखका साधन राग नहीं है।

५३४. तो सुखका साधन क्या है ?
वीतराग-विज्ञान ही सुखका साधन है।

५. रागसे लाभ नहीं मानता ऐसा कब कहा जाये ?
रागसे भिन्न चेतनवस्तुका लक्ष करे तब।

६. केवलज्ञान और श्रुतज्ञान दोनोंकी जातमें क्या फरक है ?
दोनों एक ही जातके हैं।

७. किसमें उपयोग जोड़नेसे सुख होता है ?
सुखस्वरूपी आत्मामें उपयोग जोड़नेसे सुख होता है।

८. शीघ्र करने योग्य क्या है ?
'स्वद्रव्यका ग्रहण शीघ्र करो'

९. रागमें थोड़ा भी आनन्द है ?
नहीं, उसमें तो दुःख ही है।

५४०. राग दुःख है, क्या दुःखसे सुख साधा जा सकता है ?
नहीं, सुखका साधन भी सुखरूप ही होता है।

१. अरिहंतको पहिचानकर जीव क्या करना चाहता है ?
अरिहंत जैसे अपने ज्ञानस्वभाव तरफ ढलना चाहता है।

२. सम्यग्दर्शनके निमित्तमें कौन हो सकता है ?
सच्चे देव-गुरु-शास्त्र ही निमित्त होते हैं।

३. वीतराग देव-गुरु-शास्त्र क्या सिद्ध करते हैं ?
वे आत्माके सर्वज्ञस्वभावको सिद्ध करते हैं।

१४४. यह ज्ञानमाला कैसी है?

घर नगरमें बालकोंको पढ़ाने जैसी है। अहा! इसे वीतराग विज्ञानका घर घर प्रचार करने जैसा है।

५. जैन सिद्धांतका सार क्या है?

ज्ञान-आनन्दस्वरूप आत्मा अनुभवमें लेना वह।

६. क्या ज्ञान-श्रद्धा वगैरे रागके आश्रित हैं?

नहीं, क्योंकि वे रागके अंश नहीं हैं।

७. आत्माके आश्रयसे क्या प्रगट होता है?

राग उत्पन्न नहीं होता परन्तु रागरहित गुण उत्पन्न होता है

८. दुखके समय आत्मामें दूसरा कुछ है?

हां, आनन्दका पूरा समुद्र भरा है।

९. अनन्त तीर्थंकरोंने किस रीतिसे मोक्षमार्गको साधा?

स्वसन्मुख होकर शुद्धात्माके आश्रयसे।

५०. तीनों कालके मुमुक्षुओंको तीर्थंकरोंने क्या उपदेश दिया?

अंतर्मुख होकर शुद्धात्माकी अनुभूति करो।

१. मोक्षमार्ग कितना है?

रत्नत्रयकी जितनी शुद्धता हो उतना।

२. मोक्षमार्गका कोई अंश शुभरागके शरीरके आश्रय है?

नहीं, पूरा मोक्षमार्ग आत्माके आश्रयसे ही है।

३. वह मोक्षमार्ग कैसा है?

सरस सुन्दर और स्वाधीन है।

५५४. सरस और सुन्दर क्यों है?
क्योंकि राग रहित है, रागमें सुन्दरता नहीं है।

५. निश्चय सम्यग्दर्शन क्या है?
परसे भिन्नता आत्माकी रुचि वह सम्यक्त्व है।

६. वह सम्यक्त्व कैसा है?
भला है, उत्तम है, अच्छा है, हितकर है, सत्य है।

७. सम्यग्ज्ञान क्या है?
आत्मस्वरूपका जानना ही सच्ची ज्ञानकला है।

८. सम्यक्चारित्र क्या है?
आत्मस्वरूपमे लीनता वह सम्यक्चारित्र है।

९. सुखी होनेके लिये जीवको क्या करना चाहिये?
ऐसे मोक्षमार्गके उद्यममे लगे रहना चाहिये।

६०. सबसे श्रेष्ठ कला क्या?
आत्मस्वरूपके जाननेरूप ज्ञानकला ही सबसे श्रेष्ठ है।

१. वह ज्ञानकला कैसी है?
आनन्दकी क्रीडा करती करती केवलज्ञानको साधती है।

२. चौथा गुणस्थानमे अव्रती गृहस्थका सम्यग्ज्ञान कैसा है?
अहो वह ज्ञान भी केवलज्ञानकी जातिका ही है, वह ज्ञान रागको जानता नहीं, रागसे भिन्न है।

३ क्या भगवान शुभरागको मोक्षमार्ग कहते हैं?
नहीं, उसे तो भगवानने बंध मार्ग कहा है।

२१०. अन्तरात्मा किसे कहते है?

अंतरमें देहसे भिन्न आत्माको जाननेवालेको अंतरात्मा कहते हैं।

१. परमात्मा कौन है?

परम ऐसे सर्वज्ञपदको प्राप्त हुये आत्मा परमात्मा है।

२. परमात्माके कितने प्रकार?

(१) शरीरवाले अरिहंत, (२) शरीर रहित सिद्ध।

३. अरिहंत परमात्मा कितने है?... ... लाखों।

[५]९४. सिद्ध परमात्मा कितने हैं?......अनंत।

५. अजीवतत्त्वके कितने भेद हैं?

पांच, पुद्गल-धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल।

६. उसमें रूपी कितने हैं?.....एक पुद्गल।

७. शरीर, इन्द्रिय वगैरे क्या है?

ये सब पुद्गलकी रचना है, जीवकी नहीं।

८ जीव-अजीव वगैरे तत्त्वोंको कब जाना कहलाता है?

उसको एक दूसरेमें मिलान न करे तब।

९. आत्माको जाने बिना परको जान सकता है क्या?

ना; उससे तो परमें आत्मबुद्धि है।

६००. पुण्यतत्त्वका समावेश किसमें होता है?

आस्रव और बंधमें, धर्ममें नहीं।

१. शुभ आस्रव कैसे हैं?

वह भी संसारका ही कारण है, इसलिये छोडने जैसे है।

२. संवरतत्त्व कैसा है?

वह सम्यग्दर्शनादि वीतरागभावरूप है।

३. सच्ची निर्जरा किस रीतिसे होती है?

उपयोगकी शुद्धता बढ़नेसे।

४. मोक्ष अर्थात् क्या?

जीवकी संपूर्ण ज्ञान और सुखदशा वह मोक्ष है।

६१७. क्या नरकमें भी अंतरात्मा है?
हा, वहा भी जो असंख्य सम्यग्दृष्टि है वह अंतरात्मा है।

८. अंतरात्माके गुणस्थान कौन-कौन? . चारसे बारह।

९. उत्तम अंतरात्मा कौन?
सातसे बार गुणस्थानवर्ती शुद्धोपयोगी मुनि।

२०. मध्यम अंतरात्मा कौन?
देशव्रती–श्रावक और महाव्रती–मुनि।

१. सबसे छोटा अंतरात्मा कौन?
सम्यग्दृष्टि–अव्रती गृहस्थ।

२. ये तीनों प्रकारके अंतरात्मा कैसे हैं?
'ये तीनों शिवमगचारी'–वह तीनों मोक्षमार्गी हैं।

३. क्या गृहस्थ भी मोक्षमार्गमें स्थित है?
हा, 'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थ निर्मोहो. (रत्नकरंड श्रावकाचार)

४. मनुष्य लोकमें कितने अरिहन्त भगवान विचरते है?
लाखों अरिहन्त परमात्मा मनुष्य लोकमें विचरते है।

५. अरिहन्तको कौनसा गुणस्थान है?
तेरहवा और चौदवा?

६. देहातीओ (ग्रामजनो) को इतनी बड़ी आत्माकी बात कैसे समझमें आये?
भैया तू देहाती नहीं है, तू तो अनंतगुण सहित भगवान है।

६२७. ज्ञानी क्या दिखाते हैं ?
जो स्वरूप है वही दिखाते हैं, जो है उससे अधिक नहीं कहते।

८. यह बात कैसी है ?
अपने हितके लिये जरूर समझने जैसी है।

९. करोड़ो रुपयेमें तथा बंगला-मोटरमें कितना सुख है ?
उनमें कहीं भी सुखकी गंध नहीं है।

३०. तो सुख कहा है ?
सुख तो आत्माके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रमें ही है।

१. शरीर-रुपया मकान वगैरे जीव हैं कि अजीव ?
ये सब अजीव है।

२. क्या अजीवमें सुख है ? कभी भी नहीं।

३. परलक्षी शुभाशुभभावोंमें सुख है ?. नहीं।

४. संवर-निर्जरारूप सुखमें किसकी सन्मुखता है ?
उसमें आत्माकी सन्मुखता है।

५. आस्रव-बंधरूप दुःखमें किसकी सन्मुखता है ?
उसमें पर सन्मुखता है।

६. क्या-मनुष्य क्षेत्रमें अभी अरिहंत है ?
हां, विदेहमें सीमंधरस्वामी वगैरे लाखो अरिहन्त हैं।

७ इस भरतक्षेत्रमें कोई अरिहंत थे ?
हां, ढाई हजार वर्ष पहले महावीरप्रभु विचरते थे।

६३९. संस्कृत भाषामें सबसे पहले सिद्धांत सूत्र किसने रचा?
श्री उमास्वामीने मोक्षशास्त्र संस्कृतमें रचा, वे कुन्दकुन्दाचार्य-देवके शिष्य थे।

१. मोक्षशास्त्रपर किसने-किसने टीका रची है?
पूज्यपादस्वामीने सर्वार्थसिद्धि, अकलंकदेवने तत्त्वार्थराजवार्तिक और विद्यानंदीस्वामीने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक ये तीन महान टीकाओं रची है।

६४० मोक्षशास्त्रका पहला सूत्र क्या है?
"सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।"

१. समयसारकी ११ गाथामें सम्यग्दर्शन किसको कहा है?
भूतार्थस्वभावके आश्रय सम्यग्दर्शन कहा है।

२ नव तत्त्वको जाने, परन्तु शुद्धात्माको न पहिचाने तो?
-तो उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता, और उसको नवतत्त्वका ज्ञान भी सच्चा नहीं कहलाता।

३ वीतराग भगवान कौन मार्गसे मोक्षमें गये?
अंतर्मुखी शुद्धरत्नत्रयके मार्गसे मोक्षमें गये।

४. जीवको बहिरात्म अवस्थामें क्या था?
बहिरात्म अवस्थामें वे एकांत दुःखी थे।

५. अब अंतरात्मा होनेसे क्या हुआ?
आत्माका सच्चा सुख अनुभवमें आया।

५७. क्या अंतरात्माको राग होता है?

किसीको होता है, सबको नहीं।

८. राग होने पर भी अंतरात्मा क्या करते है?

अपनी चेतनाको रागसे भिन्न अनुभव करते हैं।

९. अंतरात्माकी पहिचान करनेसे क्या होता है?

जीव-अजीवका सच्चा भेदज्ञान हो जाता है।

६०. शरीर और रागसे लाभ माने तो क्या होता है?

तो वह रागसे और शरीरसे छूट नहीं सकता, तथा वीतरागी मोक्षमार्गमें नहीं आ सकता अर्थात् संसारमे ही रहता है।

१. सम्यग्दृष्टिको अशुभभाव हो तब?

वह भी अंतरात्मा है।

२. मिथ्यादृष्टि शुभभाव करे तब?

तब भी वह बहिरात्मा है।

३. रागके समय अंतरात्माकी चेतना कैसी है?

उस समय भी उसकी चेतना रागसे अलिप्त ही है।

४. व्यवहार रत्नत्रयवाला अज्ञानी कैसा है?

अव्रती-जघन्य-अन्तरात्मासे भी हलका है, उसका स्थान मोक्षमार्गमें नहीं है।

५. सम्यग्दृष्टिकी परिणति कैसी है?

कोई अद्भुत-आश्चर्यकारी है ज्ञान-वैराग्य सहित है।

६. अविरत सम्यग्दृष्टिको कितनी कर्मप्रकृति नहीं बन्धती?

उसको कुल ४३ कर्मप्रकृति बन्धती ही नहीं। (४१+२)

१४३. रागादिभाव कैसे हैं?
   वे अंतरस्वभावके आश्रयसे उत्पन्न नहीं होते हैं।

४. अंतरस्वभावके आश्रयसे क्या उत्पन्न होता है?
   वीतरागी ज्ञान-आनंदरूप शुद्धभाव उत्पन्न होता है।

८. हम भी परमात्माको पहिचान सकते हैं?
   हाँ, अंतरात्मा होकर परमात्माको पहिचान सकते हैं।

९. क्या जड़ शरीरमें जीवका धर्म होता है?. ना।

६५०. बी. ए. एम. ए. पढ़े, परन्तु आत्माको न पहिचाने तो?
   —तो वीतरागी आत्मविद्यामें वह मूर्ख है।

१. आत्माके हितके लिये कैसी विद्या सीखनी?
   जीव-अजीवके भेदज्ञानरूप वीतराग-विद्या सीखनी।

२. अंतरात्माका लक्षण क्या?
   —ज्ञान चेतनाकी अनुभूति।

३. ज्ञानचेतना सहित अंतरात्माको वास्तवमें कौन पहिचान सकता है?
   जो स्वयं अंतरात्मा हो वह।

४. क्या अकेले अनुमानसे ज्ञानीको पहचान सकते हैं?...नहीं

५. राग और शरीरका नाश होनेसे आत्मा जी सकता है?
   हाँ, आत्मा अपने चेतनस्वभावसे सदा जीता है।

६. आत्माको प्राप्त करनेवाले अंतरात्मा कैसे हैं?
   वे तो परमात्माके पाडोशी हैं।

६५७. क्या अंतरात्माको राग होता है?

किसीको होता है, सबको नहीं।

८. राग होने पर भी अंतरात्मा क्या करते हैं?

अपनी चेतनाको रागसे भिन्न अनुभव करते हैं।

९. अंतरात्माकी पहिचान करनेसे क्या होता है?

जीव-अजीवका सच्चा भेदज्ञान हो जाता है।

६०. शरीर और रागसे लाभ माने तो क्या होता है?

तो वह रागसे और शरीरसे छूट नहीं सकता, तथा वीतरागी मोक्षमार्गमें नहीं आ सकता अर्थात संसारमें ही रहता है।

१. सम्यग्दृष्टिको अशुभभाव हो तब?

वह भी अंतरात्मा है।

२. मिथ्यादृष्टि शुभभाव करे तब?

तब भी वह बहिरात्मा है।

३. रागके समय अंतरात्माकी चेतना कैसी है?

उस समय भी उसकी चेतना रागसे अलिप्त ही है।

४. व्यवहार रत्नत्रयवाला अज्ञानी कैसा है?

अव्रती-जघन्य-अन्तरात्मासे भी हलका है, उसका स्थान मोक्षमार्गमें नहीं है।

५. सम्यग्दृष्टिकी परिणति कैसी है?

कोई अद्भुत-आश्चर्यकारी है; ज्ञान-वैराग्य सहित है।

६. अविरत सम्यग्दृष्टिको कितनी कर्मप्रकृति नहीं बन्धती?

उसको कुल ४३ कर्मप्रकृति बन्धी ही नहीं। (४१+२)

६६७. अविरत सम्यग्दृष्टिको संयम है?
नहीं, संयम नहीं है परन्तु संयमकी भावना निरंतर रहती है।

८. छोटेमें छोटे सम्यग्दृष्टिको आत्मप्रतीति कैसी है?
सिद्धभगवान जैसी।

९. कुन्दकुन्ददेवने मोक्षप्राभृतमें सम्यग्दृष्टिको कैसा कहा है?
"वे धन्य है, कृतकृत्य हैं, शूरवीर हैं पंडित हैं"।

७०. सर्वज्ञ परमात्माकी जिसको श्रद्धा नहीं वह जीव कैसा है?
वह जीव बहिरात्मा है, गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

१. सर्वज्ञका सच्चा स्वीकार कौन करता है?
ज्ञानदृष्टि सहित सम्यग्दृष्टि ही सर्वज्ञका सच्चा स्वीकार करता है।

२. सर्वज्ञके स्वीकारमें क्या क्या आता है?
अहो! सर्वज्ञके स्वीकारमें तो ज्ञानस्वभाव है; वह धर्मका मूल पाया है, उसमें तो अपूर्व तत्त्वज्ञान है, राग और ज्ञानकी जुदाईका अनुभव है।

३. सर्वज्ञता कैसी है?
अहो, उसकी क्या बात! वह तो अतीन्द्रिय ज्ञानरूप है परम आनन्दरूप है, राग-द्वेष रहित है विकल्पसे पार उसकी महिमा है।

४. शरीर होने पर भी सर्वज्ञपद हो सकता है?...हाँ।

५. सिद्धभगवान कैसे हैं?
जगतमें सबसे उत्तम (श्रेष्ठ) है आत्मा है उनका अंत

करनेसे महंत है, अनन्त सुख सहित है देह रहित है ज्ञान शरीरी है।

६७६. अनन्ता जीव-पुद्गल कहां रहते हैं?
आकाशके अनन्त वे भाग रूप लोकमें।

७. क्या अनन्त आकाशको ज्ञान पूरा जान सकता है?
हां, ज्ञानका सामर्थ्य उससे भी अनन्त है।

८ आत्माके ज्ञानमें इन्द्रिय तो निमित्त है न?
नहीं, स्वाधीन ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञानमें इन्द्रियका निमित्त भी नहीं, इन्द्रियका निमित्त तो पराधीन ऐसा इन्द्रिय ज्ञानमें है परन्तु उस ज्ञानको तो हेय कहा है, अतीन्द्रिय ज्ञान ही आनन्दका कारण होनेसे उपादेय है।

९. केवलज्ञानको कोई निमित्त है?
हां, ज्ञेयरूप पूरा जगत उसको निमित्त है।

८०. सत्य समझनेकी शुरुआत किस रीतिसे करनी?
अपना वस्तुका स्वरूप लक्षमें लेकर।

१. हलन-चलन करे तथा बोले वह जीव—क्या यह सच है?
नहीं, जो जाने वह जीव, जिसमें ज्ञान न हो वह अजीव।

२. आस्रव बंधका कारण क्या है?
जीवका अशुद्ध उपयोग।

३. पुण्य-पापके आस्रव तथा बन्ध कैसे हैं?
जीवको दुखका कारण हैं, अतः छोड़ने जैसे हैं।

३८४. मेंढ़क सम्यग्दृष्टि होता है तो उसको तत्त्वश्रद्धा होती है?
हां, जिनमार्ग अनुसार उसको बराबर तत्त्वश्रद्धा होती है।

५. तत्त्वको जानकर क्या करना?
हितकर तत्त्वको ग्रहण करना, और दु:खरूप तत्त्वको छोड़ देना।

६. दुर्भागी कौन है?
अवसर प्राप्त होनेपर भी जो आत्माको न पहिचाने वह।

७. विद्यार्थीओको क्या करना चाहिये?
उनको भी ऐसी वीतरागी पढ़ाई पढ़नी चाहिये।

८. परमेश्वर कैसे है?
वे जगतके जाननेवाले हैं परन्तु जगतके कर्त्ता नहीं।

९. जगतके पदार्थ कैसे हैं?
स्वयं सत् है दूसरा कोई उनका कर्त्ता नहीं।

३९०. क्या आत्माके अनुभव विना सर्वज्ञको पहिचान सकते है?
नहीं।

१. शरीर छिन्न-भिन्न हो तब भी जीव शांति रख सकता है क्या?
हां, क्योंकि जीव शरीरसे अलग है।

२. जीवकी भूल कब मिटे?
अपनी भूलको एवं अपने गुणको जाने तब।

३. जीवको सुख-दु:खका निमित्त कौन?
अपने गुण-दोष, दूसरा कोई नहीं, कर्म भी नहीं।

६९४. क्या आत्माका स्वभाव दुःखका कारण होता है ?
नहीं, आत्माका स्वभाव सुखका ही कारण है।

५. राग और पुण्य कभी भी सुखका कारण हो सकता है ?
नहीं, राग और पुण्य तो हमेशा दुःखका ही कारण है।

६. ऐसा जाननेवाला जीव क्या करता है ?
पुण्य-पापसे भिन्न होकर आत्मा तरफ परिणमता है।

७. पुण्यसे भविष्यमें सुख मिलेगा ये सच्चा है ?—नहीं।

८. अज्ञानी किसको आदर करते है ?—पुण्यको।

९. ज्ञानी किसको आदर करते है ?
पुण्य-पाप रहित ज्ञानचेतनाको।

७००. आत्माको अलग रखकर धर्म हो सकता है ?
कभी भी नहीं, आत्माको पहिचाने तब ही धर्म होता है।

१. सम्यग्दर्शनके निमित्त कौने हैं ?
सच्चे देव-गुरु धर्म ही सम्यक्त्वके निमित्त हैं।

२. गुण क्या ? पर्याय क्या ? द्रव्य क्या ?
(टके) कायम रहे ते गुण, परिणमन हो ते पर्याय, गुण-पर्याय सहित द्रव्य।

३. वीतरागी देव कौन है ?—अरिहंत और सिद्ध।

४ निर्ग्रंथ गुरु कौन हैं ?—आचार्य-उपाध्याय-साधु।

५. सच्चा धर्म कौनसा है।—सम्यक्त्वादि वीतरागभाव।

६. इंडामें जीव है ?
पंचेन्द्रिय जीव है; उसका आहार मांसाहारी ही है।

७१८ सच्चा आनन्द (मोक्षका आनन्द) कैसा है ?
"स्वयंभू" है, आत्मा ही उस रूप हुआ है।

९ साधक दशाका समय कितना ?—असंख्य समय।

७२० साध्यरूप मोक्षदशाका समय कितना ?—अनंत।

१ सिद्धदशा मोक्षदशा कैसी है ?
परम आनंदरूप, सम्यक्त्वादि सब गुण सहित, आठ कर्म रहित.

२. क्या चौथा गुणस्थानका सम्यग्दर्शन रागवाला है ?
नहीं, वहां राग होनेपर भी सम्यग्दर्शन तो राग रहित ही है।

३ सम्यक्त्वके साथका राग कैसा है ?
वह बंधका ही कारण है, सम्यक्त्व वह मोक्षका कारण है।

४ क्या कोईको अकेला सम्यग्दर्शन होता है ?
नहीं, निश्चय पूर्वक ही सच्चा व्यवहार होता है।

५. क्या कोईको अकेला निश्चय सम्यक्त्व होता है ?
हां. सिद्धभगवान वगेरेको अकेला निश्चय सम्यग्दर्शन है।

६. चैतन्य देव कैसा है ?
अहो ! उसकी महिमा अद्भुत है, उनमें अनंत स्वभाव है।

७. सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट होता है ?
आनन्दके अपूर्व वेदन सहित सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

८. सम्यग्दर्शनके साथमे धर्मीको क्या होता है ?
निशंकतादि आठ गुण होते है।

वह संसार योगका कारण है, वह मोक्षका कारण नहीं है।

४ उस पुण्यको कौन अनुभवता है? अज्ञानी।

५. धर्मी जीव किसकी इच्छा करता है?

वह अपना चैतन्यचिंतामणीके सिवाय कोईकी इच्छा नहीं करता।

६. स्वर्गका देव आये तो?

—वह कुछ चमत्कार नहीं, सच्चा चमत्कार तो चैतन्यदेवका है।

७. वीतरागताको साधनेवाला धर्मी किसको नमस्कार करता है?

वीतरागीदेवके अलावा दूसरे कोई देवको वह नमस्कार नहीं करता?

७३८. अरिहन्तके शरीरमें रोग और अशुची होता है?—नहीं।

९. साधकके शरीरमे रोगादि होता है?

हां, परन्तु अंदर आत्मा सम्यक्त्वादिसे सुशोभित है।

४०. मुनियोंका आभूषण क्या है?—रत्नत्रय उनका आभूषण है।

१. ऐसे मुनिराजको देखनेसे अपनेको क्या होता है?

अहो! बहुमानसे उनके चरणोंमे मस्तक झुक जाता है।

२ धर्ममे बड़ा कौन?

जिसमे गुण ज्यादा वह बड़ा धर्ममे पुण्यसे बड़ा नहीं कहा जाता।

३. धर्मी अकेला हो तो?

तो भी घबराता नहीं, सत्यमार्गमे वह निशंक है।

४. जैसे माताको पुत्र प्यारा है, वैसे धर्मीको क्या प्यारा है?

धर्मीको प्यारा है साधर्मी, धर्मीको प्यारा है रत्नत्रय।

५. धर्मकी सच्ची प्रभावना कौन कर सकता है?

जो स्वयं धर्मकी आराधना करे वह।

६. धर्मीको चक्रवर्तीपदका भी अभिमान क्यों नहीं होता?

क्योंकि चैतन्य-तेजके पास चक्रवर्तीपद तुच्छ लगता है?

७. मनुष्यका उत्तम अवतार प्राप्त कर क्या करना?

चैतन्यकी आराधना द्वारा भवके अंतका उपाय करना।

८. पुत्रको दीक्षाके लिये माता कौनसी शर्तसे अनुमति दी?

अब दूसरी माता न करना पड़े, इस शर्तसे।

७३८. अरिहन्तके शरीरमें रोग और अशुची होता है?—नहीं।

९. साधकके शरीरमें रोगादि होता है?
हां, परन्तु अंदर आत्मा सम्यक्त्वादिसे सुशोभित है।

४०. मुनियोंका आभूषण क्या है?—रत्नत्रय उनका आभूषण है।

१. ऐसे मुनिराजको देखनेसे अपनेको क्या होता है?
अहो! बहुमानसे उनके चरणोंमें मस्तक झुक जाता है।

२ धर्ममें बड़ा कौन?
जिसमें गुण ज्यादा वह बड़ा धर्ममें पुण्यसे बड़ा नहीं कहा जाता।

३. धर्मी अकेला हो तो?
तो भी घबराता नहीं, सत्यमार्गमें वह निशंक है।

४. जैसे माताको पुत्र प्यारा है, वैसे धर्मीको क्या प्यारा है?
धर्मीको प्यारा है साधर्मी, धर्मीको प्यारा है रत्नत्रय।

५. धर्मकी सच्ची प्रभावना कौन कर सकता है?
जो स्वयं धर्मकी आराधना करे वह।

६. धर्मीको चक्रवर्तीपदका भी अभिमान क्यों नहीं होता?
क्योंकि चैतन्य-तेजके पास चक्रवर्तीपद तुच्छ लगता है?

७. मनुष्यका उत्तम अवतार प्राप्त कर क्या करना?
चैतन्यकी आराधना द्वारा भवके अतका उपाय करना।

८. पुत्रको दीक्षाके लिये माता कौनसी शर्तसे अनुमति दी?
अब दूसरी माता न करना पड़े, इस शर्तसे।

७६२. सम्यग्दर्शन तो कोई भी धर्मसे हो सकता है क्या?
नहीं; जैनमार्ग सिवाय दूसरेमें सम्यग्दर्शन नहीं होता।

३. सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेसे जीवको क्या हुआ?
वह पंचपरमेष्ठीकी नातमें मिल गया।

४. सम्यग्दर्शन रहित शुभभावकी करनी कैसी है?
वह भी जीवको दुःखकारी है।

५. क्या नरकमें सम्यग्दृष्टि होते हैं?.. हां असंख्यात हैं।

६. कोई सम्यग्दृष्टि-मनुष्य मरकर विदेहक्षेत्रमें उत्पन्न होता है?
नहीं।

७. जैनमार्ग कैसा है?.. वह भगवान होनेका मार्ग है।

८. तीनलोक और तीनकालमें जीवको हितकर क्या है?
सम्यक्त्व समान दूसरा कोई हितकर नहीं है।

९. जीवको जगतमें अहितकारी क्या है?
मिथ्यात्व समान अहितकारी दूसरा कोई नहीं है।

५०. मिथ्यादृष्टि जीव स्वर्गमें उत्पन्न हो तो?
वह भी संसार ही है, उसे वहां भी सुख नहीं है।

१ सुखी कौन है?
सुखी तो समकिती है जिसने चैतन्यतत्त्वको देखा है।

२. सम्यक्त्व विनाकी सब क्रिया कैसी है?
दुःखको ही देनेवाली है।

७८३. भगवानको पहिचाने तो क्या होता है?
आत्मा पहिचाननेमें आता है और सम्यग्दर्शन होता है।

४. अनंत जीव मोक्ष गये-वे सब क्या करके मोक्ष गये?
सम्यग्दर्शन प्राप्त करके अनंत जीवो मोक्ष गये हैं।

५ सम्यग्दर्शन विना कोई मोक्ष पाया है?...नहीं।

६. सम्यक्त्वका अच्छा (सरस) महिमा सुनकर क्या करना?
हे जीवो! तुम जागो.. सावधान हो...और स्वानुभव करो।

७. ऋषभदेवके जीवको सम्यग्दर्शन प्राप्त कराने हेतु मुनिने क्या कहा?
'हे आर्य! तुम इस समय इस सम्यक्त्वको ग्रहण करो...
क्योंकि तुझे सम्यक्त्वकी प्राप्तिका काल है।

८. ऋषभदेवके जीवने ऐसा सुनकर क्या किया?
मुनिराजकी उपस्थितिमें ही जीवने तत्क्षण ही सम्यग्दर्शन प्रगट किया।

९ इस उदाहरणसे हमको क्या करना चाहिये?
सम्यक्त्वको धारण करो. 'काल वृथा मत खोवो।'

९०. देवोंके अमृतसे भी ऊंचा रस कौन सा है?
सम्यग्दृष्टिका अतीन्द्रिय आत्मरस अमृतसे भी ऊंचा है।

१. सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेसे क्या हुआ?
अहो, सम्यग्दर्शन प्राप्त होनेसे आत्मामें मोक्षका सिक्का लग गया।
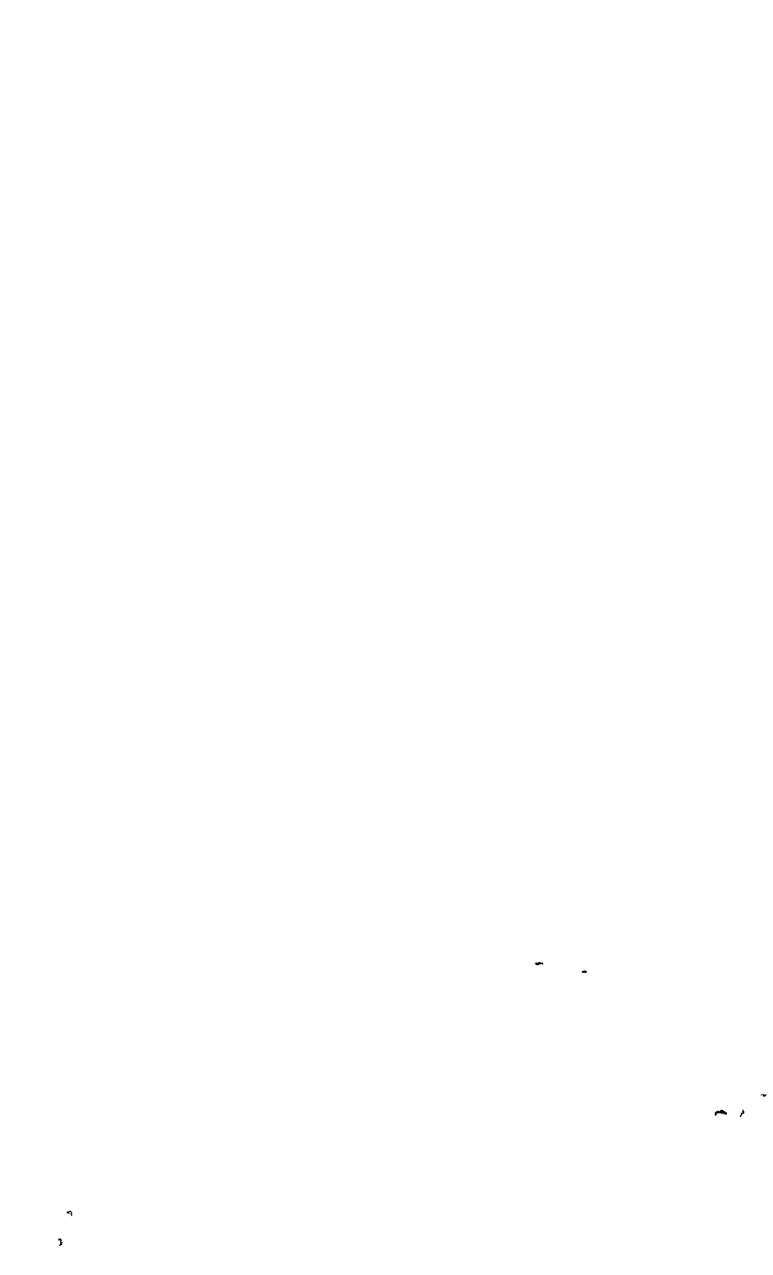
मोक्षमहलकी पहली सीढ़ी : सम्यग्दर्शन, हे भव्य ! उसको शीघ्र धारण करो काल वृथा मत गँवाओ

[तीसरी ढालके अन्तिम पदका प्रवचन छपनेमें बाकी रह गया था, जो यहां दिया जाता है। पृष्ठ १९४–१९५ के बीचमें इसको पढ़ना चाहिए ।]

सम्यग्दर्शनकी अपार महिमा बतलाकर अब इस तीसरी ढालके अन्तिम छंदमें उसकी अत्यन्त प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि अरे जीव ! तू काल गँवाये विना इस पवित्र सम्यग्दर्शनको धारण कर।

[श्लोक १७]

मोक्षमहलकी परथम सीढी, या विन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ, सुन, चेत, सयाने काल वृथा मत खोवै ।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै ॥१७॥

अहा, सम्यग्दर्शनका स्वरूप अचिन्त्य है। हे भव्य! ऐसे सम्यग्दर्शनको पहिचानकर अत्यन्त महिमापूर्वक तू उसे शीघ्र धारण कर...जरा भी काल गँवाये विना तू सावधान हो और उसे शीघ्र प्राप्त कर, क्योंकि यह सम्यग्दर्शन ही मोक्षकी पहली सीढ़ी है,

ज्ञान या चारित्र होई सम्यग्दर्शनके बिना सच्चे नहीं होते। सम्यग्-दर्शनसे रहित सर्व जो ज्ञान तथा शुभ आचरण वह मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है, इसलिये हे भव्य! तू यह उपदेश सुनकर चेत, समझ और काल गँवाये बिना सम्यग्दर्शनका सच्चा उपाय कर। यदि इस भवमें सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो फिर ऐसा मनुष्यभव और जिनधर्मका ऐसा सुयोग प्राप्त होना कठिन है।

यदि अवसर चूक गया तो तेरे पछताना पड़ेगा। अतः कवि अपने आत्माको सम्बोधन करके कहते हैं एवं अन्य भव्य जीवोंसे भी कहते हैं कि हे चैतन्य दौलतवाले आतमराम! हे भव्य जीव! तुम अत्यन्त सावधान होकर चेतो और उद्यमपूर्वक शीघ्र सम्यक्त्वको धारण करो।

मोक्षरूपी महलमें पहुँचनेके लिये रत्नत्रयरूपी जो नसैनी है उसकी पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन है, उसके बिना ऊपरकी सीढ़ियाँ (श्रावकदशा, मुनिदशा आदि) नहीं होतीं। नसैनीकी पहली सीढ़ी भी जिससे नहीं चढ़ी जाती वह पूरी सीढ़ी चढ़कर मोक्षमें कैसे पहुँचेगा? सम्यग्दर्शनसे रहित सब क्रियाएँ अर्थात् शुभभाव वे कहीं धर्मकी सीढ़ी नहीं है, वह तो संसारमें उतरनेका मार्ग है। रागको जिसने मार्ग माना वह तो संसारके मार्गमें है, रागके मार्ग पर चलकर कहीं मोक्षमें नहीं पहुँचा जा सकता। मोक्षका मार्ग तो स्वानुभवयुक्त-सम्यग्दर्शन है। आत्माकी पूर्ण शुद्ध वीतरागी दशा वह मोक्षरूपी आनन्दमहल है और अंशतः शुद्धतारूप सम्यग्दर्शन वह मोक्षमहलकी पहली सीढ़ी है। अंशतः शुद्धताके बिना पूर्ण

शुद्धताके मार्ग पर कहाँसे पहुँचा जायगा? अशुद्धताके मार्ग पर चलनेसे कहीं मोक्षनगर नहीं आता।

मोक्ष क्या है?—मोक्ष कोई त्रैकालिक द्रव्य या गुण नहीं है, परन्तु वह तो जीवके ज्ञानादि गुणोंकी पूर्ण शुद्धदशारूप कार्य है, उसका मूल कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनका लक्ष्य पूर्ण शुद्ध आत्मा है, उस पूर्णताके ध्येयसे पूर्णके ओरकी धारा उल्लसित होती है, बीचमें रागादि हों, व्रतादि शुभभाव हों, परन्तु सम्यग्दृष्टि उन्हें आस्रव जानता है, वह कहीं मोक्षकी सीढ़ी नहीं है। सम्यक्ता कहो या शुद्धता कहो, ज्ञान-चारित्रादिकी शुद्धिका मूल सम्यग्दर्शन है। शुभराग वह कहीं धर्मकी सीढ़ी नहीं है; रागका फल सम्यग्दर्शन नहीं है और सम्यग्दर्शनका फल शुभराग नहीं है, दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं।

आत्मा शांत वीतराग स्वभाव है; वह पुण्य द्वारा, राग द्वारा, व्यवहार द्वारा प्राप्त नहीं होता अर्थात् अनुभवमें नहीं आता, परन्तु सीधा स्वयं अपने चेतनभाव द्वारा अनुभवमें आता है। ऐसा अनुभव हो तब सम्यग्दर्शन होता है और तभी मोक्षमार्ग खुलता है। अनंत जन्म-मरणके नाशके उपायमें तथा मोक्षके परमानन्दकी प्राप्तिमें सम्यग्दर्शन ही पहली सीढ़ी है उसके बिना शास्त्रज्ञान या शुभरागकी क्रियाएँ वह सब निरर्थक हैं, उससे धर्मका फल जरा भी नहीं आता इसलिये वह सब निरर्थक है। नवतत्त्वोंकी मात्र व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान या पंचमहाव्रतादि शुभ आचार वह कोई राग आत्माके सम्यग्दर्शनके लिये किंचित् भी कारणरूप नहीं

सम्यग्दर्शनके बिना ज्ञान या चारित्रमें यथार्थता नहीं आती अर्थात् मिथ्यापना रहता है। सम्यग्दर्शनके बिना सब झूठा ?–हां, मोक्षके लिये वह सब निरर्थक है, धर्मके लिये वह सब बेकार है। शास्त्रज्ञानकी बातें करके चाहे जितना लोकरंजन करे, धारावाही भाषण देकर अनेक न्याय–तर्क कहे, अथवा व्रतादि आचरणरूप क्रियाओंके द्वारा लोकमें वाहवाह होती हो, परन्तु सम्यग्दर्शनके बिना वह ज्ञान और आचरण सब मिथ्या है, उसमें आत्माका किंचित् हित नहीं है; उसमें मात्र लोकरंजन है, आत्मरंजन नहीं है, आत्माका सुख नहीं है।

व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान चारित्र, वे सम्यग्दर्शनके बिना कैसे हैं ?—तो कहते हैं कि वे सम्यक्ताको प्राप्त नहीं होते अर्थात् सच्चे नहीं किन्तु मिथ्या हैं, उनके द्वारा मोक्षमार्ग जरा भी नहीं सधता।

सम्यग्दर्शन पूर्वक ही सच्चे ज्ञान-चारित्र होते हैं और मोक्षमार्ग सधता है, इसलिये वह धर्मका मूल है।

अहा, ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शनको हे भव्य जीवो! तुम धारण करो, बहुमान सहित उसकी आराधना करो। हे सयाने सूज्ञ आत्मा तू चेत, समझ और सावधान होकर प्रमादके बिना उस सम्यग्दर्शनको शीघ्र प्राप्त कर। सम्यग्दर्शनके लिये अवसर है, फिर बारबार यह मनुष्य भव प्राप्त होना दुर्लभ है। अतः यह उत्तम उपदेश सुनकर, तत्क्षण ही अन्तरमें अपने शुद्ध आत्माकी अखण्ड अनुभूति सहित श्रद्धा करके सम्यक्त्वके दीपक प्रगट कर। हे भव्य! हे सुखाभिलाषी मुमुक्षु! सुखके लिये तू इस उत्तमकार्यको शीघ्र कर!-शीघ्र अपने आत्माकी पहिचान करके अपनेको भवसमुद्रसे उबार।

('मोक्ष कह्यो निज शुद्धता') आत्माके सर्व गुणोंकी पूर्ण-शुद्धता सो मोक्ष है।

('सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व') आत्माके सर्व गुणोंकी अंशतः शुद्धता सो मोक्षमार्ग है।

आत्मामें जैसा ज्ञानानन्दस्वभाव त्रिकाल है वैसा पर्यायमें प्रगट हो उसका नाम मोक्ष, और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका कारण वह मोक्षमार्ग, उसमें भी मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन क्या है? यह दूसरे पदमें बताया कि-

"परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि, सम्यक्त्व भला है।"

परद्रव्योंसे भिन्न आत्माकी रुचि सो सम्यग्दर्शन है। मोक्षार्थीको सबसे पहले ऐसा सम्यग्दर्शन अवश्य प्रगट करना चाहिये।

रुक गया है। कभी पाप छोड़कर शुभरागमें आया परन्तु शुभराग भी अभूतार्थ धर्म है, वह मोक्षका कारण नहीं है, और उसके अनुभवसे कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। “भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी”—भूतार्थाश्रित जीव सम्यग्दृष्टि है। सब तत्त्वोंका सच्चा निर्णय सम्यग्दर्शनमें होता है। आत्मा चैतन्यप्रकाशी ज्ञायक सूर्य है, उसकी किरणोंमें रागादिका अंधकार नहीं है, शुभाशुभराग वह ज्ञानका स्वरूप नहीं है। ऐसे रागरहित ज्ञानस्वभावको जानकर उसकी प्रतीति एवं अनुभूति करना सो अपूर्व सम्यग्दर्शन है, वह सबका सार है।

‘परमात्मप्रकाश’में कहते हैं कि अनादिकालसे संसारमें भटकते हुए जीवने दो वस्तुएँ प्राप्त नहीं की—एक तो श्री जिनवरस्वामी और दूसरा सम्यक्त्व। बाह्यमें तो जिनवरस्वामी मिले परन्तु स्वयं उनके सच्चे स्वरूपको नहीं पहिचाना इसलिये उसे जिनवरस्वामी नहीं मिले,—ऐसा कहा है। जिनवरके आत्माका स्वरूप

पहिचाननेसे सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान-चारित्रको भगवानके मार्गकी अर्थात् सच्चाईकी छाप नहीं मिलती। सम्यग्दर्शन द्वारा शुद्धात्माको श्रद्धामें लिया तब ज्ञान सच्चा हुआ और ऐसे श्रद्धा-ज्ञान द्वारा अनुभवमें लिये हुए अपने शुद्धात्मामें लीन होनेसे चारित्र भी सच्चा हुआ, इसलिये कहा है कि—

> "मोक्षमहलकी परथम सीढ़ी, या विन ज्ञान चरित्रा,
> सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा।"

धर्मकी पहली सीढ़ी पुण्य नहीं किन्तु सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनसे रहित जीवने पुण्य भी अनन्तबार किया, किन्तु वह संसारका ही कारण हुआ धर्मका किंचित् कारण न हुआ। सम्यग्दर्शन करके ही अनन्त जीवोंने मोक्षसाधना की है। सम्यग्दर्शनके बिना किसीने मोक्ष नहीं पाया। सम्यग्दर्शनके बिना ज्ञान नहीं है और चारित्र भी नहीं है। सम्यग्दर्शन सहित ही ज्ञान और चारित्र शोभा पाते हैं। इसलिये हे भव्य! ऐसे पवित्र सम्यक्त्वको अर्थात् निश्चय सम्यक्त्वको तुम शीघ्र धारण करो, काल गँवाये बिना ऐसा सम्यक्त्व प्रगट करो। आत्मबोध बिना शुभरागसे तो मात्र पुण्य-बंधन है, उसमें मोक्षमार्ग नहीं है, और सम्यग्दर्शनके पश्चात् भी जो राग वह मोक्षमार्ग नहीं है. रागरहित जो रत्नत्रय वही मोक्षमार्ग है, जितना राग है उतना तो बंधन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन वह राग है, विकल्प है, वह पवित्र नहीं है, निश्चय सम्यग्दर्शन वह पवित्र है, वीतराग है, निर्विकल्प है। विकल्पसे भिन्न होकर चेतना द्वारा ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माके अनुभव पूर्वक प्रतीति करना वह सच्चा

सम्यक्त्व है, वह मोक्षका सोपान है, इसलिये शुद्धात्माको अनुभवमें लेकर ऐसे सम्यक्त्वका धारण करनेका आदेश है।

हे जीवो! सम्यक्त्वकी ऐसी महिमा सुनकर अब तुम जागो, जागकर चेतो, सावधान होओ, और ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शनका स्वरूप समझकर अपने पुरुषार्थ द्वारा उसे धारण करो; उसमें प्रमाद न करो। इस दुर्लभ अवसरमें सम्यग्दर्शन ही प्रधान कर्तव्य है। पुनः पुनः ऐसा अवसर मिलना कठिन है। सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो इस दीर्घसंसारमें परिभ्रमणका कहीं अन्त नहीं आयेगा.. इसलिये हे समझदार जीवो! तुम उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शनको धारण करो। सावधान होकर अपनी स्वपर्यायको संभालो! उसे अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शनरूप करो। तुम्हारी पर्यायके कर्त्ता तुम ही हो; भगवान तो तुम्हारी पर्यायके ज्ञाता हैं परन्तु कर्त्ता नहीं हैं, कर्त्ता तो तुम्हीं हो। इसलिये तुम स्वयं आत्माके उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन पर्यायरूप परिणमित होओ।

अपना आत्मा क्या है उसे जाने बिना अनन्तबार यह जीव स्वर्गमें गया, परन्तु वहाँ उसे किंचित् सुख प्राप्त नहीं हुआ, वह संसारमें ही भटका। सुखका कारण तो आत्मज्ञान है। अज्ञानीको करोड़ों जन्म तक तप करनेसे जो कर्म खिरते हैं वे ज्ञानीको आत्मज्ञान द्वारा एक क्षणमें खिर जाते हैं इसलिये कहा है कि—
"ज्ञानसमान न आन, जगतमें सुखको कारन..." तीन लोकमें सम्यग्दर्शनके समान सुखकारी दूसरा कोई नहीं है। आत्माके सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना जीवको सुखकी एक बुन्द
आनी अर्थात् धर्म नहीं होता।

ग्रंथकार कवि अपने आपको सम्बोधन करके कहते हैं कि हे दौलतराम-आत्मा! यह हितोपदेश सुनकर, समझकर चेतो! शीघ्र सम्यग्दर्शन धारण कर अपना हित करो। 'दौलतराम' अर्थात् अन्तरमें चैतन्यकी दौलतवाला आतमराम, चैतन्यकी सम्पदारूप अनन्त दौलतवाले हे दौलतराम! हे आतमराम! तुम तो सुज्ञ हो, विवेकी हो, और यह तुम्हारे हितका अवसर आया है। तुम कहीं मूर्ख नहीं हो, समझदार ज्ञानके भण्डार हो, अतः चेतो...समझो और सम्यक्त्वको अभी धारण करो। सम्यक्त्वकी प्राप्तिका यह अवसर है इसे वृथा मत खोओ।

जो समझदार है, जो आत्माको भवदुःखसे छुड़ाने तथा मोक्ष-सुखके अनुभवके लिये सम्यक्त्वका पिपासु है, ऐसे भव्य जीवको सम्बोधन करके सम्यग्दर्शनकी प्रेरणा देते हैं कि—अरे प्रभु! यह तेरे हितका अवसर आया है, तू कोई मूढ़ नहीं किन्तु समझदार है, सयाना है, हित-अहितका विवेक करनेवाला है, जड़-चेतनका विवेक करनेवाला है इसलिये तू श्रीगुरुका यह उत्तम उपदेश सुनकर अब तुरन्त सम्यग्दर्शन धारण कर। यहाँ तक आकर अब विलम्ब न कर। शरीरादिसे भिन्न आत्माका अनुभव कर, उसका अतरंग उद्यम कर।

"समझ, सुन, चेत, सयाने!" हे सयाने जीव! तू सुन, समझ और सावधान हो। चेतकर अविलम्ब सम्यक्त्वको धारण कर। मोहका अभाव करके सावधान हो और अपनी ज्ञानचेतना द्वारा अपने शुद्ध आत्माको चेत.. उसका अनुभव कर। सर्वज्ञ

परमात्मामें जो है वह सब तेरे आत्मामें भी है—ऐसा जानकर प्रतीति करके स्वानुभव कर। मृगकी भाँति बाह्यमें मत ढूंढ़, अंदर अन्दर है उसे अनुभवमें ले।

देखो, गृहस्थ-पंडितने भी शास्त्राधारसे छहढालाकी कितनी सुन्दर रचना की है।

संसारमें भटकते-भटकते अनंतकालमें बड़ी कठिनाईसे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ, उसमें ऐसा जैनधर्म और सत्समागम मिला, सम्यक्त्वका ऐसा उपदेश मिला, तो अब कौन ऐसा मूर्ख होगा जो इस अवसरको व्यर्थ गँवा दे? भाई, काल गँवाये बिना अंतरंग उद्यम पूर्वक तू निर्मल सम्यग्दर्शन धारण कर। चार गतियोंमें बहुत दुःख तूने सहे, अब उन दुःखोंसे छूटनेके लिये आत्माकी यह बात सुन। सम्यग्दर्शनकी ऐसी उत्तम बात सुनकर अब तू जागृत हो और तुरन्त ही सम्यग्दर्शन कर ले। यह तेरा समझनेका काल है, सम्यग्दर्शन प्रगट कर। देखो, कैसा अच्छा सम्बोधन किया है! भोगभूमिमें भी भगवान ऋषभदेवके जीवको सम्यग्दर्शनका उपदेश देकर मुनिराजने ऐसा कहा था कि—हे आर्य! तू इसी समय इस सम्यक्त्वको ग्रहण कर.. तुझे सम्यक्त्वकी प्राप्तिका यह काल है। 'तत् गृहाण अद्य सम्यक्त्वं तत्लाभे काल एष ते' और सच-मुच उस जीवने तत्क्षण ही सम्यग्दर्शन प्रगट किया। उसीप्रकार यहाँ भी कहते हैं कि-हे भव्य! तू अविलम्ब—इसी समय सम्यक्त्वको धारण कर! और सुपात्र जीव अवश्य सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

हे जीव! जितना चैतन्यभाव है उतना ही तू है, अजीवसे तेरा आत्मा भिन्न है, रागादि ममत्वसे भी आत्माका स्वभाव भिन्न है, ऐसे आत्माकी प्रतीतिके बिना अनंतकाल व्यर्थ गँवा दिया, परन्तु अब यह उपदेश सुननेके बाद तू एक क्षण भी मत गँवाना; तुरन्त ही अन्तरमें सम्यक्त्वका उद्यम करना, प्रत्येक क्षण अति मूल्यवान है; बहुमूल्य मणि-रत्नोंसे भी मनुष्यभव मँहगा है और फिर उसमें भी इस सम्यग्दर्शन-रत्नकी प्राप्ति महा दुर्लभ है। अनंतबार मनुष्य हुआ और स्वर्गमें भी गया, परन्तु सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया—ऐसा जानकर अब तू सम्यग्दर्शन प्रगट कर। जहाँ सच्चा पुरुषार्थ है वहाँ काललब्धि भी साथमें ही है। पुरुषार्थसे काललब्धि भिन्न नहीं है इसलिये हे भाई! इस अवसरमें आत्माको समझकर उसकी श्रद्धा कर! अन्य निष्प्रयोजन कार्योंमें काल न गवाँ।

परके कार्य तेरे नहीं हैं और न परवस्तु तेरे कामकी है; आनन्दकन्द आत्मा ही तेरा है, उसीको काममें ले, श्रद्धा-ज्ञानमें ले। परवस्तु या पुण्य-पाप तेरे हितके लिये काम नहीं आयेंगे, अपने ज्ञानानन्दस्वभावको श्रद्धामें ले वही तुझे मोक्षके लिये कार्यकारी है। समयसारमें आत्माको भगवान कहकर बुलाया है। जिस प्रकार माता बच्चेका पालना झुलाते हुए गीत गाती है कि "मेरा मुन्ना बड़ा सयाना..." इसीप्रकार जिनवाणी माता कहती है कि हे जीव! तू भगवान है.. तू सयाना-समझदार है, इसलिये मोह छोड़कर जाग, चेत और अपने आत्मस्वभावको देख...आत्मस्वभावका

आत्मा अखण्ड ज्ञान-दर्शनस्वरूप है, वह पवित्र है, पुण्य-पाप तो मलिन हैं, उसमें स्व-परको जाननेकी शक्ति नहीं है, और भगवान आत्मा तो स्वयं अपनेको तथा परको भी जाने ऐसा चेतकस्वभावी है।—ऐसे आत्माके सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा और अनुभव करनेसे जो सम्यग्दर्शन हुआ उसका महान प्रताप है। सम्यग्दर्शनसे रहित सब बिना इकाइके शून्यके समान है, धर्ममें उसका कोई मूल्य नहीं है। सम्यग्दृष्टिको अन्तरमें चैतन्यके शांत-रसका वेदन है। अहा, उस शांतिके अनुभवकी क्या बात! श्रेणिक राजा वर्तमानमें नरकगतिमें होने पर भी सम्यग्दर्शनके प्रतापसे वहाँके दुःखसे भिन्न ऐसे चैतन्यसुखका वेदन भी उनको वर्त रहा है। पहले मिथ्यात्वदशामें महापापसे उन्होंने सातवें नरककी असंख्य वर्षकी आयुका बँध कर लिया, परन्तु बादमें वे सम्यक्त्वको प्राप्त हुए और सातवें नरककी आयु तोड़कर पहले नरककी मात्र ८४००० चौरासी हजार वर्षकी आयु कर दी। वे राजगृहीके राजा गृहस्थाश्रममें अव्रती थे, तथापि भगवान महावीरके समवसरणमें क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, नरक आयु नहीं बदल सकी परन्तु उसकी स्थिति तोड़कर असंख्यातवें भागकी कर दी। नरककी घोर यातनाओंके बीच भी उससे अलिप्त ऐसी सम्यग्दर्शन परिणतिके सुखका वह आत्मा वेदन कर रहा है। "बाहर नारकीकृत दुःख

भोगे, अंतर सुखरस गटागटी।"—इसप्रकार सम्यग्दर्शन सहित जीव नरकमे सुखी है, और सम्यक्दर्शनके विना तो स्वर्गमें भी वह दुःखी है। श्री परमात्मप्रकाशमें कहा है कि—सम्यग्दर्शन सहित तो नरकवास भी अच्छा है और सम्यग्दर्शनसे रहित देवलोकमें निवास भी अच्छा नहीं...अर्थात जीवको सर्वत्र सम्यग्दर्शन ही इष्ट है, भला है, सुखकारी है, इसके विना जीवको कहीं सुख नहीं है। सम्यग्दर्शनमें अतीन्द्रिय आत्मरसका वेदन है; देवोंके अमृतमें भी उस आत्मरसका सुख नहीं है। मनुष्य-जीवनकी सफलता सम्यग्दर्शनसे ही है, स्वर्गकी अपेक्षा सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है, तीन लोकमें सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है। ज्ञान और चारित्र भी सम्यग्दर्शन सहित हों तभी श्रेष्ठताको प्राप्त होते हैं।

श्रेणिकको नरकमे भी भिन्न आत्माका भान है और सम्यक्त्वके प्रतापसे कर्मोकी निर्जरा हो रही है, वहां भी उन्हें निरन्तर तीर्थंकर-प्रकृति बंधती है। नरकसे निकलकर वह जीव इस भरतक्षेत्रकी आगामी चौबीसीमें प्रथम तीर्थंकर होगा। उनके गर्भागमनके छह मास पूर्व इन्द्र-इन्द्राणी यहां आकर उनके माता-पिताका संमान करेंगे, तथा उनके आगनमे रत्नवृष्टि होगी। वह जीव तो अभी नरकमें होगा। बादमें जब माताके उदरमें आयेगा तब भी वह जीव सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान एवं अवधिज्ञान सहित होगा। मैं देह नहीं, नारकी भी मैं नहीं, और दुःख भी मै नहीं, इस देहके छेदन-भेदन होनेसे मेरे आत्माका छेदन-भेदन नहीं होता, मैं तो चैतन्यसुखका अखण्ड पिण्ड शाश्वत हूँ—ऐसी आत्मश्रद्धा नरकमें भी उस जीवको

सदा रहा करती है, और वह मोक्षमहलकी सीढ़ी है। नरकमें रहता हुआ भी वह जीव सम्यग्दर्शनके प्रतापसे मोक्षके मार्गमें ही गमन कर रहा है। अहो, सम्यग्दर्शनकी कोई अद्भुत अचिंत्य महिमा है। ऐसे सम्यग्दर्शनको पहचानकर हे जीवो! तुम अपनेमें उसकी आराधना करो।

हे जीव! दुनियाँकी सब चिन्ता छोड़कर तू आत्मज्ञानके द्वारा अपना हित कर ले। दुनिया नहीं जानती कि सम्यग्दर्शन क्या चीज है। सम्यग्दर्शन किसीको इन्द्रियज्ञानसे देखनेमें नहीं आ सकता। अहा, सम्यग्दर्शन होते ही आत्मामें मोक्षकी मुहर लग गई, और परम सुखका निधान खुल गया। जो स्वयं अनुभव करे उसे ही उसके महिमाकी सच्ची खबर पड़े। जिस प्रकार महा भाग्यसे हाथमें आये हुए चिन्तामणिको कोई मूर्ख समुद्रमें फेंक दे, तो फिर वह हाथमें आना मुश्किल है, इसप्रकार चिन्तामणि जैसा जो यह मनुष्य अवतार, उसे यदि सम्यग्दर्शनके बिना खो दिया तो भवके समुद्रमें फिर इसकी प्राप्ति होना बहुत कठिन है, अतः इस दुर्लभ अवसरमें अन्य सब प्रपंच छोड़कर सम्यग्दर्शन अवश्य कर लेना

और उसे झेलकर कितने ही जीव सम्यक्त्वादिको पा लेते हैं; अभी वर्तमानमें यहाँ भरतक्षेत्रमें भी हम ऐसे सम्यक्त्वको पा सकते हैं। प्रत्येक आत्मार्थी जीवको ऐसा उत्तम कल्याणकारी सम्यग्दर्शन अवश्य करना चाहिए। अतः हे विवेकी आत्मा! इस अवसरमें सम्यग्दर्शनका ऐसा माहात्म्य सुनकर तू सावधान हो और सम्यक्त्व प्राप्त करले... किसी अनुभवी-ज्ञानीसे आत्मस्वरूप समझकर सम्यग्दर्शन प्रगट कर। यही मनुष्यजीवनका अमूल्य कार्य है। इसके बिना जीवनको व्यर्थ न गँवा।

शरीर और आत्मा भिन्न हैं; राग और ज्ञान भिन्न हैं; शरीर एवं रागसे रहित तेरा चैतन्यतत्त्व अखण्ड पूर्ण है, यह जानकर खुश होकर तू सम्यग्दर्शनका उद्यम कर। चैतन्यमय तेरे स्वतत्त्वको परसे भिन्न देखकर प्रसन्नतासे अनुभवमें ले और मोक्षमार्गमें आ जा। लक्षकोटि सुवर्णमुद्रा देकर भी जिसकी एक क्षण मिलना मुश्किल है—ऐसे इस मनुष्यजीवनकी एक पल भी वृथा न गँवा। आत्माकी शोभा सम्यग्दर्शनसे है अतः इसी जीवनमें सम्यक्त्व कर ले—जिससे आत्मा सुखी बन जाय। अमूल्य मनुष्यजीवनमें उससे भी अमूल्य ऐसा सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले। बाह्यके लक्ष्मी-परिवार ये कोई तेरे शरण नहीं हैं, पुण्य भी शरण नहीं है, सम्यग्दर्शनादि निजगुण ही शरण है। सम्यग्दर्शनसे जीवनकी सफलता है और उसीसे जीवकी शोभा है। ऐसा अच्छा सुयोग पुनः पुनः नहीं मिलता, अतः ऐसे सुयोग पाकर सम्यग्दर्शन अवश्य करो ही करो।

अन्तमें फिर एकबार कहते हैं कि हे जीव! आत्माको समझ कर श्रद्धा करनेका यह अवसर आया है उसको मालूम कर लेना। हे भाई! आत्माका स्वरूप समझकर हित करनेके योग्य ज्ञानादि तेरेमें हैं, तो तेरे ज्ञानादिको परमें (संसारके कार्यमें) मत लगा, किन्तु आत्महितके कार्यमें जोड़ दे। उपयोगको अंतर्मुख करके वीतरागविज्ञान प्रगट कर। तेरी बुद्धिको आत्मामें लगाकर सम्यग्दर्शन कर। तू स्वयं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हो...अधिक क्या कहें? चेत... चेत...चेत!

卐 जय हो सम्यग्दर्शनधर्मकी 卐

[छहढाला : तीसरी ढालके प्रवचन पूर्ण हुए]

सम्यग्दृष्टि, महान अलौकिक आत्माकि अतद्रूपमान जिसे प्रतीत हुई है उसे निश्चयसे सम्यक्त्वके साथ व्यवहार भी पचीस दोषरहित होता है। आजीविका छूट जाय, धन लुट जाय, देशको छोड़ना पड़े या प्राण जायें, तथापि सम्यग्दृष्टि जीव किसी भी प्रकारके भयसे–आशासे–स्नेहसे कुधर्मकी या कुदेवादिकी आराधना नहीं करता। वीतरागी देव–गुरु–धर्मका भक्त हिंसक देव–देवियोंको

वीतरागी देव गुरु धर्मका आदर और उससे विपरीत कुदेव-कुगुरु-कुधर्मका त्याग, इतना तो सम्यक्त्वी पात्रजीवको प्रथम भूमिकामें होना चाहिये। "त्याग-विराग न चित्तमें थाय न तेने ज्ञान,"—ऐसा श्रीमद् राजचन्द्रने कहा, उसमें कुदेवादिका त्याग तो पहलेसे ही समझ लेना चाहिये। दूसरे तो अनेक प्रकारके त्याग किये, परतु कुदेव-कुगुरुके सेवनका त्याग न करे तो उसका रंच-मात्र भी हित नहीं होता। और जहाँ रागको धर्म माना वहाँ वैराग्य कहाँ रहा? अरे, देहसे भिन्न मेरा अखण्ड चैतन्यतत्त्व क्या है और उसका अनुभव कैसा है? उसका सच्चा स्वरूप बतलाने वाले वीतराग सर्वज्ञदेव, रत्नत्रयवन्त गुरु और रागरहित धर्म तथा शास्त्रको जो पहिचाने वह जीव उससे विरुद्ध अन्य किसीको मानता नहीं, नमन नहीं करता और प्रशंसा नहीं करता।

एक ओर कुन्दकुन्दाचार्य जैसे वीतरागी सन्तोंका भक्त कहलाये तथा दूसरी ओर उनसे विरुद्ध कहनेवालोंका आदर तथा श्रद्धा करे,

तो उसे सत्यका विवेक कहाँ रहा? भाई! वीतरागमार्गके और वीतरागी सन्तोंके विरोधी ऐसे कुगुरुके सेवनसे तो मिथ्यात्वकी पुष्टि तथा तीव्र कषायके द्वारा आत्माका बहुत अहित होता है, जिससे उसका निषेध करते हैं। इसमें कहीं किसी व्यक्तिके प्रति द्वेष नहीं है, परन्तु जीवोंकी हितबुद्धि ही है। अपनी श्रद्धा स्वच्छ रहे, उसमें दोष न लगे उसकी बात है। सत्यमार्गसे विरुद्ध विकल्प धर्मी कभी उठने नहीं देता। मिथ्यात्व-सम्बन्धी दोषोंसे बचने और सम्यक्त्वकी शुद्धि बनाये रखनेके लिये निःशंकितादि आठ अंग आदरणीय हैं।

—इसप्रकार सम्यक्त्व सम्बन्धी गुण-दोषको पहिचानकर अपने हितके लिये निःशंकितादि आठ गुणसहित, शंकादिक पच्चीस दोषरहित शुद्ध सम्यक्त्वको धारण करो—ऐसा उपदेश है।

हे मोक्षार्थी साधर्मी! भगवानका आत्मा प्रत्येक प्रसंगमें (गर्भसे लेकर मोक्ष तक) कैसे चैतन्यभावरूप परिणत हो रहा है—उसे तुम पहिचानो। अकेले संयोगको, पुण्यके ठाटको या राग-द्वेषको देखनेमें मत रुको, उनसे पार आत्मिकगुणोंके द्वारा प्रभुकी सच्ची पहचान करो, तब तुम्हें भी सम्यक्त्वादि होगा और तुम भी प्रभुके मोक्षके मार्गमें प्रविष्ट हो जाओगे।

स्वरूपाचरण तो हुआ है, किन्तु अभी मुनिदशाका [illegible]-चारित्र न होनेसे वह असंयमी है, असंयमी होते हुए भी वह प्रशंसनीय है,-असंयम कहीं प्रशंसनीय नहीं परन्तु सम्यग्दर्शन प्रशंसनीय है, उसके प्रतापसे वह मोक्षको साध रहा है।

और जिसको चैतन्यस्वरूपका भान नहीं है वह रागकी रुचिसे मिथ्यात्वसहित अनन्तानुबंधी कषायोंमें वर्तता है, उसे विषयोंकी रुचि छूटी नहीं, क्योंकि जिसे रागका प्रेम है उसे रागके फलरूप विषयोंका प्रेम भी है ही, वह शुभरागसे व्रतादिका पालन करे तो भी शास्त्रकार उसे प्रशंसनीय नहीं कहते, क्योंकि वह (सम्यग्दर्शनके विना) मोक्षके मार्गमें नहीं आया। यही बात श्री समन्तभद्र महाराजने रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहा है कि-गृहस्थ सम्यग्दृष्टि जो कि निर्मोही है,-दर्शनमोहरहित है वह तो मोक्षमार्गमें स्थित है, परन्तु जो मोहवान है ऐसा मिथ्यादृष्टि अनगार (द्रव्यलिंग धारक साधु) मोक्षमार्गमें नहीं है, अतः मोहवान मुनिसे निर्मोही गृहस्थ श्रेय है-भला है-उत्तम है-प्रशंसनीय है। अहो, ऐसे सम्यग्दर्शन समान श्रेयकर तीनकाल तीनलोकमें दूसरा कोई नहीं है।

कोई मिथ्यादृष्टि सूखी रोटी खाता हो या उपवास करता हो तो भी उसे रागमें तथा विषयोंमें सुखबुद्धि है, और कोई सम्यग्दृष्टि मिष्टान्न खा रहा हो फिर भी उसे उसका रस नहीं है, चैतन्य-सुखको चखकर विषयोंमेंसे सुखबुद्धि हट गई है, अतः वह विषयोंमें रत नहीं है। यद्यपि चारित्रमोहके कारण विषयाशक्ति है परन्तु सम्यक्त्वमें दोष नहीं है।

प्रश्न.—सम्यग्दृष्टिके बाह्यविषय होते हैं तब फिर हमें भी हो तो क्या दोष?

उत्तर.—अरे भाई! यह तेरा स्वछंद है, सम्यग्दृष्टिका हृदय देखना तुझे नहीं आता। तुझे आत्माके विषयातीत सुखकी पहचान नहीं है और तेरी बुद्धि रागमें ही लगी हुई है, अतः तू रागको व विषयोंको ही देखता है, परन्तु सम्यग्दृष्टिके अंतरमें रागातीत—विषयातीत जो ज्ञानचेतना विद्यमान है उसे तो तू नहीं देखता, वह ज्ञानचेतना विषयोंको या रागको छूती ही नहीं, दूर ही दूर रहती है, और ऐसी चेतनाके प्रभावसे ही सम्यग्दृष्टि प्रशंसनीय है। जब तेरेमें तो ज्ञानचेतना है ही कहां? तू तो रागमें ही तल्लीन हो,—फिर भी कहता है कि 'हमें क्या दोष?'-यह तो तेरा स्वच्छंद है।

एक ही घरमें दो पुत्र हों, दोनों एकसा भोगोपभोग करते हों, फिर भी उस समय एकको तो अनन्तकर्मबंध होता है, दूसरेको अल्प,-इसका कारण? अन्तरकी दृष्टिके अन्तरके कारण बड़ा फर्क पड़ जाता है।

अरे, सम्यग्दृष्टि तो परमात्माका पुत्र हो गया, परमात्माकी गोदमें बैठा, अब तो उसे केवलज्ञान लेनेकी तैयारी हो गई, मोक्ष-महलकी सीढ़ी पर चढनेका उसने प्रारम्भ कर दिया। (मोक्ष-महलकी परथम सीढ़ी यह बात १७ वें श्लोकमें कहेंगे।)

अहा, ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शनको बहुमानसे धारण करो, थोड़ा भी समय व्यर्थ मत गमाओ, प्रमाद छोड़ दो अंतरमें शुद्धात्माका अनुभव करके सम्यग्दर्शनको अभी ही धारण कर लो।